अश्रुपात

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

हिंदी-साहित्य की उत्तमोत्तम गल्प पुस्तकें

चित्रशाला	२), २॥)
प्रेम-प्रसून	१=), १॥=)
प्रेम-गंगा	१), १॥)
प्रेम-द्वादशी	१), १॥)
नंदन-निकुंज	१), १॥)
मंजरी	१), १॥)
प्रेम-पचीसी	२॥)
प्रेम-पूर्णिमा	२)
सप्त सरोज	॥)
प्रेम-प्रमोद	१॥=) २।=)
प्रेम-प्रतिमा	२)
रवींद्र-कथा-कुंज	१)
पुष्पलता	१)
नवनिधि	॥)
गल्प-गुच्छ (चार भाग)	३॥)

गंगा-पुस्तकमाला का सड़सठवाँ पुष्प

अश्रुपात

['बेगमात के आँसू' का अनुवाद]

मूल-लेखक

ख़्वाजा हसन निज़ामी

छायानुवादकर्ता

श्रीराम शर्मा बी० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।।)] सं० १९८४ वि० [सादी १।)

1927

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइन-आर्ट-प्रेस

लखनऊ

प्रस्तावना

'अश्रुपात' ख़्वाजा हसन निज़ामी की सर्वोत्कृष्ट रचना 'बेगमात के आँसू' का रूपांतर है। ख़्वाजा हसन निज़ामी के राजनीतिक तथा धार्मिक विचारों से पाठकों का मत-भेद होगा। स्वयं लेखक उनकी अनेक बातों से मत-भेद रखता है। पर उनकी रचनाएँ उर्दू-साहित्य के अनमोल रत्न हैं, और साहित्य-सागर में सांप्रदायिक भाव, ऊँच-नीच और जाति-पाँति-रूपी रोड़े सब विलोयमान हो जाते हैं। मानव-समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिये साहित्य एक अनुपम । । उस लड़ी में ख़्वाजा साहब ने अनेक सौरभमय सुमनों को पिरोया है, और इस दृष्टि से उनका साहित्यिक जीवन प्रशंसनीय तथा आदरणीय है।

ख़्वाजा हसन निज़ामी की लेखन-शैली, भाषा-सौंदर्य और भाव-गांभीर्य प्रशंसनीय हैं। उनके शब्द हृदय पर सीधी चोट करते हैं, और शब्द भी कैसे—साधारण और हृदयग्राही। उनकी कल्पना भी ग़ज़ब की होती है। 'अश्रुपात' में ख़्वाजा हसन निज़ामी की पैनी लेखन-शैली, भाषा के माधुर्य और भावों की उच्चता का पूर्ण समावेश है। दिल्ली के ग़दर के उपरांत मुग़ल-वंश को कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ीं, राजकुमारियाँ और राजकुमार कौड़ी-कौड़ी के लिये कैसे तरसे—इन सब बातों का वर्णन 'अश्रुपात' में है। चरित्र-चित्रण,

अपूर्व कल्पना-शक्ति, मनोविकार तथा जीवन के अन्य उपचारों का सम्मिश्रण किस ख़ूबी के साथ किया गया है, इसका पाठकों को 'अश्रु-पात' के पढ़ने से ही अनुभव होगा।

अनुवाद में कहीं-कहीं मूल-पुस्तक की पंक्तियाँ-की-पंक्तियाँ छोड़ दी गई हैं; पुस्तक को प्रत्येक प्रकार से हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये रुचिकर और अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया गया है। उर्दू में 'बेगमात के आँसू' की सात आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। गुजराती में भी उसका अनुवाद हो गया है। उसका अँगरेज़ी अनुवाद भी कदाचित् शीघ्र ही निकलेगा।

मुझे ख़्वाजा हसन निज़ामी ने अपनी संपूर्ण रचनाओं का हिंदी तथा बँगला में अनुवाद करने का अधिकार दे दिया है, इसलिये मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

चना का खेत,
टिहरी (गढ़वाल)

विनीत
श्रीराम शर्मा

सूची

आश्रफ़ल
७

"आज सरकार के लगाए हुए पौदों में ये मिरचें लगी थीं । भेंट के लिये लाई हूँ ।" (पृष्ठ-संख्या १३६)

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

अश्रुपात

पहला अध्याय

बहादुरशाह की फ़क़ीरी

दिल्ली के अंतिम बादशाह एक साधु-संन्यासी स्वभाव के बादशाह हुए हैं। उनके वैराग्य तथा साधु-मैत्री के सैकड़ों उदाहरण दिल्ली और भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। दिल्ली में तो अभी सैकड़ों मनुष्य ऐसे जीवित हैं, जिन्होंने इन गुदड़ीधारी बादशाह को अपनी आँखों देखा और अपने कानों से उनकी वैराग्य-वाणी को सुना।

देश का शासन-प्रबंध अँगरेज़-कंपनी के अधिकार में था, इसलिये राजा को केवल ईश्वर-भजन और वेदांत-संबंधी वार्तालाप तथा विचार के अतिरिक्त और कुछ कार्य न करना पड़ता था। दरबार लगता, तो उसमें भी आध्यात्मिक विषय पर बात छिड़ जाती, तत्संबंधी आज्ञाएँ भी लोगों को दी जातीं और काव्य-शैली से वेदांत के सिद्धांत और उसकी बारीकियों पर मनन किया जाता था। जब दरबारी लोग दीवानेआम या दीवानेख़ास में एकत्र हो जाते, तो श्रीमान् सम्राट् महोदय दरबार में आने की तैयारी करते। ज्यों ही वह चलते, त्यों ही राज-प्रासाद की परिचारिका पुकारकर कहती—"होशियार, अदब क़ायदा निगाहदार।" इस परिचारिका का शब्द दरबार के चोबदार सुनते, और वे भी, "होशियार अदब क़ायदा निगाहदार" की उच्च ध्वनि करते। इसको सुनकर संपूर्ण दरबारी सिमट-सिमटाकर ठीक ढंग से अपने-अपने स्थानों पर आकर खड़े हो जाते। उस समय का दृश्य विचित्र ही होता था। सब अमीर-वज़ीर शीश झुकाए,

आँखें नीची किए, और हाथ बाँधे खड़े होते थे। किसी का यह साहस न था कि अपनी दृष्टि ऊपर करके देख सके या अपने शरीर को इधर-उधर हिला-डुला सके। संपूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा जाती थी। जिस समय श्रीमान् भीतरी ड्योढ़ी से गद्दी पर आ विराजते, तो चोबदार पुकारता—"ज़ल्लेइलाही बरामद कर्द मुजरा अदब से।"* यह सुनते ही एक अमीर सहमा-सहमा अपने स्थान से आगे बढ़ता और महाराज के सम्मुख उस स्थान पर जा खड़ा होता, जिसको मान-स्थान कहते थे, और वहाँ जाकर तीन बार झुककर प्रणाम करता। प्रणाम करते समय चोबदार अमीर की हैसियत और शान के माफ़िक़ उसके विरद में कुछ शब्द कहता और महाराज का ध्यान उसके प्रणाम की ओर आकर्षित करता। अस्तु, इसी प्रकार संपूर्ण दरबारी एक-एक करके मुजरे और प्रणाम की रीति को पूरा करते। जब ये संपूर्ण रीतियाँ पूरी हो चुकतीं, तो श्रीमान् महाराज कहते—"आज मैंने एक ग़ज़ल लिखी है, और ग़ज़ल की पहली शेर कहता हूँ।" शेर सुनते ही एक अमीर अपने स्थान से फिर सहमा-सहमा मान-स्थान पर जाता, और सिर झुकाकर विनय करता—"सुभानअल्ला कलामुल्मलूक मलूकुल्कलाम"† और फिर अपने स्थान पर आ खड़ा होता। इस प्रकार प्रत्येक शेर पर भिन्न-भिन्न अमीर लोग मान-स्थान पर जाकर स्तुति तथा प्रशंसा करते थे। बहादुरशाह प्रारंभ से ही वेदांत-पूर्ण तथा आश्चर्य-जनक कविता करते थे, जिसमें विरह, वैराग्य तथा उपदेश की गहरी झलक रहती थी। उन लेखों में भी नैराश्य तथा उदासीनता का समावेश होता था।

बहादुरशाह मुरीद (चेला) भी करते थे, और जो व्यक्ति मुरीद होता था, उसके पाँच रुपए मासिक नियत हो जाते थे। इसलिये लोग एक बड़ी संख्या में इनके मुरीद होते थे। किन्हीं लोगों का

* श्रीमान् सम्राट्—जिन पर परमात्मा की छाया है—आए हैं। प्रणाम करो।

† राजों की वाणी राजों की ही वाणी होती है।

कहना है कि बहादुरशाह श्रीमान् मौलाना फ़ख़्र के चेले थे। परंतु मौलाना साहब के काल में बहादुरशाह अल्पवयस्क थे। इसलिये समझ में नहीं आता कि छोटी आयु में वह उपर्युक्त मौलाना के चेले हुए होंगे। हाँ, इसका तो प्रमाण है कि शैशव काल में उनको उपर्युक्त मौलाना साहब की गोद में डाला गया था। मौलाना साहब की मृत्यु के उपरांत मौलाना के पुत्र मियाँ क़ुतुबुद्दीन से बहादुरशाह को बहुत लाभ पहुँचा। वास्तव में बहादुरशाह ने उन्हीं से बहुत कुछ सीखा। मियाँ क़ुतुबुद्दीन के पुत्र मियाँ नसीरुद्दीन, उपनाम काले साहब, में भी महाराज का विशेष विश्वास था। यहाँ तक कि अपनी लड़की मियाँ काले साहब को ब्याह दी थी। बहादुरशाह को साधारणतः फ़क़ीरों और साधुओं से मिलने की अभिलाषा थी, और वह स्वयं भी पहुँचे हुए साधु थे। वह श्रीमान् सुल्तान शेख़ ख़्वाजा निज़ामुद्दीन से भी हार्दिक प्रेम करते थे। श्रीयुत ख़्वाजा हसन निज़ामी के नाना श्रीमान् शाह ग़ुलामहसन चिश्ती से बहादुरशाह का मैत्री-भाव था। श्रीयुत चिश्ती साहब प्रायः क़िले में जाते और बहादुरशाह की विशेष बैठकों और निजी वार्तालाप में सम्मिलित हुआ करते थे। ख़्वाजा हसन निज़ामी की माता अपने पिता श्रीयुत ग़ुलामहसन चिश्ती साहब से सुनी हुई बहादुरशाह की सैकड़ों कहानियाँ सुनाया करती थीं।

राजा से रंक और अधःपतन

बहादुरशाह यदि ग़दर की आपत्ति में सम्मिलित न होते, तो उनकी फ़क़ीरी बड़े आनंद और भरोसे से कटती। परंतु बेचारे धार्मिक बहादुरशाह विद्रोही सेना के चक्कर में पड़ गए, और उनकी आयु के अंतिम दिन सैकड़ों कष्टों में बीते।

जिस दिन बहादुरशाह दिल्ली के क़िले से निकले, तो सीधे दरगाह निज़ामुद्दीन पधारे। उस समय महाराज के मुखमंडल पर नैराश्य और

दुःख के चिह्न अंकित थे। कुछ मुख्य ख़्वाजासराओं, कहारों और शुभचिंतकों के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति उनके साथ न था। चिंता और भय से महाराज की आकृति उतरी हुई थी; उनकी सफ़ेद दाढ़ी पर धूल जमी हुई थी। महाराज का आगमन सुनकर ख़्वाजा हसन निज़ामी के नाना श्रीयुत गुलामहसन चिश्ती दरगाह में आए, और देखा कि बादशाह समाधि के सिरहाने, दरवाज़े का तकिया लगाए बैठे हैं। उनको देखते ही बादशाह नियमानुसार खिलखिलाकर हँस दिए। वह सामने बैठ गए, और महाराज की कुशल-क्षेम पूछी। उत्तर में बड़ी दृढ़ता से उन्होंने कहा—"मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये अभागे विद्रोही सिपाही मनमानी करनेवाले हैं। इन पर विश्वास करना भूल है। स्वयं भी डूबेंगे, और मुझे भी डुबावेंगे। अंत में वही हुआ। भाग निकले। भाई, यद्यपि मैं एकांतवासी फ़क़ीर हूँ, तो भी हूँ उस ख़ून का स्मारक, जिसमें अंतिम साँस तक सामना करने का जोश होता है। मेरे बाप-दादों पर इससे अधिक आड़े-समय पड़े, और उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। परंतु मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी। अब इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि मैं भारतीय गद्दी पर मुग़लों का अंतिम चिह्न हूँ। मुग़ल-शासन के दीपक की साँस टूट रही है, और वह कोई घड़ी का मेहमान है। फिर जान-बूझकर वृथा क्यों रक्तपात कराऊँ? इसीलिये क़िला छोड़कर चला आया। देश परमात्मा का है, वह जिसको चाहे, दे। सैकड़ों वर्ष हमारे वंश ने भारत की भूमि में वीरता से सिक्का चलाया। अब दूसरे का समय है। वे शासन करेंगे, मुकुटधारी कहलावेंगे, और हम उनके विजित कहलावेंगे। यह कोई शोक या विषाद की बात नहीं। हमने भी तो दूसरों को मिटाकर अपना घर बसाया था।"

इन करुणा-पूर्ण बातों के उपरांत महाराज ने एक छोटा संदूक़ दिया और कहा—"लो, यह तुम्हारे सिपुर्द है। तैमूर ने जब क़ुस्तुंतुनिया को

जीता था, तो वहाँ के कोष से उन्हें यह उपहार हाथ लगा था। इसमें श्रीमान् पैग़ंबर साहब की दाढ़ी के पाँच बाल हैं, जो आज तक हमारे कुटुंब में माहात्म्य की दृष्टि से चले आते हैं। अब मेरे लिये पृथ्वी या आकाश में कहीं ठिकाना नहीं। इनको लेकर अब कहाँ जाऊँ? आपसे बढ़कर इनका कोई पात्र नहीं। लीजिए, इनको रखिए। ये मेरे हृदय और आँखों की ठंडक हैं, जिनको आज के दिन की आतंकमयी विपत्ति में अपने से अलग कर रहा हूँ।* आज तीन दिन से भोजन करने का अवकाश नहीं मिला। यदि घर में कुछ तैयार हो, तो लाओ।" चिश्ती साहब ने कहा—"हम लोग भी मृत्यु के समीप खड़े हैं। खाने-पकाने का होश नहीं। घर जाता हूँ, जो कुछ है, भेंट करता हूँ। अच्छा हो, आप स्वयं घर ही पधारें। जब तक मैं जीवित हूँ, और मेरे बच्चे बचे हुए हैं, तब तक कोई आदमी आपके हाथ नहीं लगा सकता। पहले हम मर जायँगे, उसके उपरांत कोई और समय आ सकेगा।" महाराज ने उत्तर दिया—"आपके इस कथन के लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। पर इस बूढ़े शरीर की रक्षा के लिये अपने गुरुओं की संतान को हत्यागृह में भेजना मुझे कभी सह्य न होगा। दर्शन कर चुका, अमानत सौंप दी, अब दो ग्रास पवित्र लंगर से खा लूँ, तो हुमाऊँ के मक़बरे में चला जाऊँगा। वहाँ जो भाग्य में लिखा है, पूरा हो जायगा।"

चिश्ती साहब घर गए। पूछने से ज्ञात हुआ कि घर में बेसनी रोटी और सिरके की चटनी है। बस, वही एक थाल में सजाकर ले आए। महाराज ने वह चने की रोटी खाकर तीन वक़्त के बाद पानी पिया, और परमात्मा को धन्यवाद दिया। इसके उपरांत हुमाऊँ के मक़बरे में जाकर गिरफ़्तार हो गए, और रंगून भेज दिए गए। रंगून में भी महाराज

* वह छोटा संदूक़ उन बालों के सहित दरगाह के तोशाख़ाने में रख दिया गया, जो अब भी दरगाह में है।

के फ़क़ीरी रहन-सहन में कोई अंतर न पड़ा। जब तक जीवित रहे, एक संतुष्ट तथा ईश्वर-भक्त साधु की भाँति निर्वाह करते रहे।
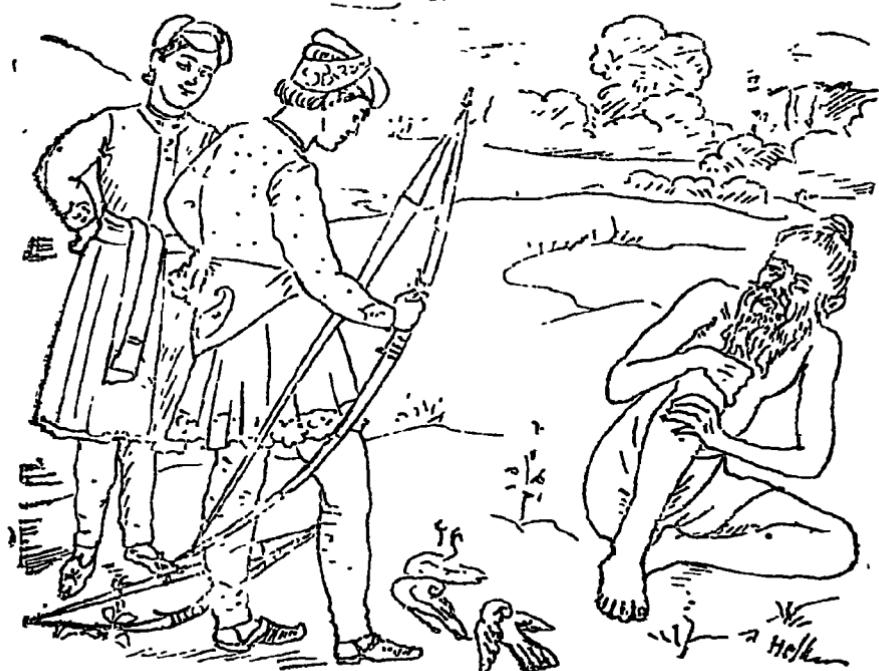
यह वह कथा है, जिसमें बुद्धिमान् मनुष्य के लिये उपदेश की बहुत बड़ी सामग्री है, जिसके सुनने से मनुष्य अपने घमंड और गर्व को भूल जाता है, और जब मन से मद और घमंड की गंध जाती रहती है, तो मनुष्य वास्तविक मनुष्य बन जाता है।

दूसरा अध्याय

राजकुमार का बाज़ार में घसिटना

(१)

ग़दर से एक वर्ष पूर्व दिल्ली से बाहर जंगल में कुछ राजकुमार शिकार खेलते फिरते थे, और बेपरवाही से छोटी-छोटी चिड़ियों और पिडकियों को, जो दोपहर की धूप से बचने के लिये वृक्षों की हरी टहनियों पर परमात्मा के स्मरण में गाना गा रही थीं, ग़ुल्ले मार रहे थे। सामने से एक गुदड़ीधारी साधु आ निकला। इसने बड़े शिष्टाचार से राजकुमारों को प्रणाम करके विनय की कि श्रीमन् राजकुमारो, इन गूँगे जीवों को क्यों सताते हो? इन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है? इनके भी जान है। यह भी आपकी भाँति दुःख और कष्ट का अनुभव करते हैं। परंतु विवश हैं, और मुँह से कुछ नहीं कह सकते। आप राजों की संतान हैं। राजों को अपने देशवासियों पर प्रेम और कृपा करनी चाहिए। ये जीव भी देश में रहते हैं। इनके साथ भी दया और न्याय का व्यवहार हो, तो राजसी ठाठ से कुछ विपरीत न होगा।" बड़े राजकुमार ने, जिसकी आयु अठारह वर्ष की थी, लज्जित होकर ग़ुलेल हाथ से रख दी। परंतु छोटे मिर्ज़ा नसीरुल्मुल्क बिगड़कर बोले—"जा रे जा! दो टके का आदमी हमें शिक्षा देने निकला है! तू कौन होता है हमको समझानेवाला? सैर व शिकार सब करते हैं। हमने किया, तो कौन-सा पाप हो गया?" साधु बोला—"हुज़ूर! ख़फ़ा न हूजिए। शिकार ऐसे जीवों का करना चाहिए कि एक जान जाय, तो दस-पाँच आदमियों का तो पेट भरे। इन नन्हीं-नन्हीं चिड़ियों के मारने से क्या फल? बीस मारोगे, तब भी एक आदमी का पेट न भरेगा।" नसीर मिर्ज़ा साधु के दुबारा

बोलने से आग-बबूला हो गए, और एक गुल्ला गुलेल में रखकर साधु के घुटने में इस ज़ोर से मारा कि बेचारा मुँह के बल गिर गया, और अकस्मात् इसके मुँह से निकल पड़ा—"हाय ! टाँग तोड़ डाली ।" साधु के गिरते ही राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर क़िले की ओर चले गए, और साधु घसिटता हुआ सामने के क़बरिस्तान की ओर चलने लगा। घसिटता जाता था, और कहता जाता था—"वह गद्दी क्योंकर आबाद रहेगी, जिसके उत्तराधिकारी ऐसे क्रूर पिशाच हैं ! लड़के ! तूने मेरी टाँग तोड़ दी। परमात्मा तेरी भी टाँगें तोड़े, और तुझे भी इस प्रकार घसिटना पड़े ।"

(२)

तोपें गरज रही थीं। गोले बरस रहे थे। पृथ्वी पर चारों ओर

लाशों के ढेर दृष्टिगोचर हो रहे थे। दिल्ली-नगर उजाड़ और सुन-सान होता जाता था। लाल क़िले से फिर वहीं कई राजकुमार घोड़ों पर सवार घबराहट में भागते हुए दिखाई दिए, और पहाड़गंज की ओर जाने लगे। दूसरी ओर बीस-पच्चीस गोरे सिपाही धावा करते चले आते थे। उन्होंने इन युवा सवारों पर एकसाथ बंदूक़ों की बाढ़ मारी। गोलियों ने घोड़ों और सवारों को चलनी कर दिया, और ये सब राजकुमार धूल के बिछौने पर गिरकर ख़ून में तड़पने लगे। गोरे जब निकट आए, तो देखा, दो राजकुमार मरे पड़े हैं, और एक साँस ले रहा है। एक सिपाही ने जीवित राजकुमार का हाथ पकड़कर उठाया, तो ज्ञात हुआ, उसके कहीं चोट नहीं आई, घोड़े के गिरने से साधारण ख़ुरसँट आ गई है। भय के मारे उसे बेहोशी आ गई है। स्वस्थ देखकर घोड़े की बागडोर से राजकुमार के हाथ बाँध दिए गए, और हिरासत में करके दो सिपाहियों के हाथ कैंप में भिजवा दिया गया। कैंप पहाड़ी पर था, जहाँ गोरों के सिवा कालों की भी सेना थी। जब बड़े साहब को ज्ञात हुआ कि यह सम्राट् का नाती नसीरुलमुल्क है, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ, और आज्ञा दी कि उसको सँभालके रक्खा जाय।

(३)

विद्रोहियों की सेना हारकर भागने लगी, और अँगरेज़ी लश्कर धावा मारता हुआ शहर में घुस गया। बहादुरशाह हुमाऊँ के मक़बरे में गिर-फ़्तार हो गए। मुग़ल-वंश का दीपक झिलमिलाकर बुझ गया, और जंगल कुल-ललनाओं के नंगे सिरों और खुले चेहरों से बसने लगा। पिता के सम्मुख पुत्र की हत्या होने लगी, और माताएँ अपने जवान बेटों को धूल और ख़ून में लोटता देखकर चीख़ें मारने लगीं।

इसी लूट-खसोट में पहाड़ी कैंप पर मिर्ज़ा नसीरुलमुल्क रस्सी से बँधे बैठे थे कि एक पठान सिपाही दौड़ा हुआ आया और कहा—"जाइए,

मैंने आपके छुटकारे के लिये साहब से आज्ञा माँग ली है। जल्दी भाग जाओ, ऐसा न हो कि किसी दूसरी बला में फँस जाओ।"

मिर्ज़ा बेचारे पैदल चलना क्या जानें। वह आश्चर्य में थे कि क्या करें। परंतु 'मरता क्या न करता'। पठान को धन्यवाद देकर निकले, और जंगल की ओर हो लिए। चल रहे थे, परंतु यह पता न था कि कहाँ जाते हैं। एक मील चले होंगे कि पैरों में छाले पड़ गए, जीभ सूख गई, गले में काँटे पड़ने लगे। थककर एक वृक्ष की छाया में गिर पड़े। आँखों में आँसू भरकर आकाश की ओर देखा, और कहा—"परमात्मन्! यह क्या आपत्ति हम पर टूटी? हम कहाँ जायँ? किधर हमारा ठिकाना है?" ऊपर जो देखा, तो वृक्ष पर दृष्टि गई। देखा, पिंडकी का एक घोंसला बना हुआ है, और वह सुख से अपने अंडों पर बैठी है। इसकी स्वतंत्रता और सुख पर राजकुमार को बड़ी ईर्प्या हुई, और कहने लगे—"ऐ पिंडकी! मुझसे तो तू लाखगुना अच्छी है। आनंद से अपने घोंसले में विना किसी चिंता के बैठी है। मेरे लिये तो आज पृथ्वी-आकाश में कहीं स्थान नहीं है।"

थोड़ी दूर पर एक बस्ती दिखाई देती थी। साहस करके वहाँ जाने का निश्चय किया। यद्यपि पाँव के छाले चलने न देते थे, तो भी लश्टम-पश्टम गिरते-पड़ते वहाँ पहुँचे। वहाँ का दृश्य विचित्र ही था। एक वृक्ष के नीचे सैकड़ों गँवार जमा थे और चबूतरे पर एक तेरह साल की भोली-भाली लड़की बैठी थी, जिसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। कानों से रुधिर बह रहा था, और गाँववाले उसकी खिल्ली उड़ा रहे थे। ज्यों ही मिर्ज़ा की दृष्टि उस बच्ची पर पड़ी, और उस बेचारी ने मिर्ज़ा को देखा, त्यों ही दोनों की चीख़ें निकल गईं। भाई बहन से और बहन भाई से चिपटकर रोने लगे। मिर्ज़ा नसीरुल्मुल्क की यह छोटी बहन अपनी माता के साथ रथ में

सवार होकर क़िले से क़ुतुब चली गई थी। मिर्ज़ा को स्वप्न में भी ख़याल न था कि वह इस विपत्ति में पड़ गई होगी। उन्होंने पूछा—"राजकुमारी तुम यहाँ कहाँ?" वह रोकर बोली—"भाई-जी! गूजरों ने हमको लूट लिया। नौकरों को मार डाला। माता-जी को दूसरे गाँववाले ले गए। मुझको यहाँ ले आए। मेरी बालियाँ उन्होंने नोच लीं। मेरे थप्पड़-ही-थप्पड़ मारे हैं।" इतना कहकर लड़की की हिचकी बँध गई और फिर कोई शब्द उसके मुँह से न निकला। असहाय राजकुमार ने अपनी दुखिया बहन को सांत्वना दी, और इन गँवारों से प्रार्थना की कि वे उसे छोड़ दें। गूजर बिगड़कर बोले—"अरे जा! आया बड़ा बेचारा! एक गँड़ासा ऐसा मारेंगे कि गर्दन कट जायगी। इसको हम दूसरे गाँव से लाए हैं। ला, दाम दे जा, और लेजा।" मिर्ज़ा ने कहा—"चौधरियो! दाम कहाँ से दूँ? मैं तो स्वयं तुमसे रोटी का टुकड़ा माँगने के योग्य हूँ। देखो, तनिक दया करो, कल तुम हमारी प्रजा थे, और हम राजा कहलाते थे। आज आँखें न फेरो। परमात्मा किसी का समय न बिगाड़े। यदि हमारे दिन फिर गए, तो मालामाल कर देंगे।" यह सुनकर गँवार बहुत हँसे, और कहने लगे—"ओहो! आप राजा हैं! तब तो हम तुमको फ़िरंगियों के हाथ बेचेंगे, और यह छोकरी तो अब हमारे गाँव की टहल करेगी, झाड़ू देगी, ढोरों के आगे चारा डालेगी, गोबर उठावेगी।"

ये बातें हो ही रही थीं कि सामने से अँगरेज़ी सेना आ गई। उसने गाँववालों को घेर लिया, और चार चौधरियों और उन दोनों—राजकुमार और राजकुमारी—को पकड़कर ले गई।

(४)

चाँदनी चौक के बाज़ार में फाँसियाँ गड़ी हुई थीं, और जिसको अँगरेज़ी अफ़सर कह देते थे कि इसको फाँसी होनी चाहिए, उसको

फाँसी दी जाती थी। प्रतिदिन सैकड़ों आदमी सूली पर लटकाए जाते, गोलियों से उड़ाए जाते और तलवार के घाट उतारे जाते थे। चारों ओर इस रक्तपात का तहलका था। मिर्ज़ा नसीरुलमुल्क और

इनकी बहन भी बड़े साहब के सम्मुख पेश हुए; साहब ने इन दोनों को अल्पवयस्क देखकर निर्दोष समझा और छोड़ दिया। दोनों

छुटकारा पाकर एक व्यापारी के यहाँ नौकर हो गए। लड़की व्यापारी के बच्चे को खिलाती थी और नसीरुल्मुल्क बाज़ार का सौदा-पत्ता लाया करते थे। कुछ दिनों के उपरांत लड़की तो हैज़े में मर गई और मिर्ज़ा कुछ दिन इधर-उधर नौकरी-चाकरी करते रहे। अंत को ब्रिटिश-सरकार ने इनकी पाँच रुपए मासिक पेंशन नियत कर दी।

एक वर्ष की बात है कि दिल्ली के बाज़ार में एक वृद्ध, जिनकी आकृति मुग़ल-वंशसूचक थी, कोलुहों के सहारे घसिटते फिरा करते थे। इनके पैर कदाचित् लक़वे से बेकाम हो गए थे, इसलिये हाथों को टेक-टेककर कोलुहों को घसीटते हुए चलते थे। इनके गले में एक झोली रहती था। दो पग चलते और रास्ता चलनेवालों की ओर करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखते, मानो आँखों-ही-आँखों में अपनी दीनता प्रकट करके भीख माँगते थे। जिन लोगों को इनका पता था, वे तरस खाकर झोली में कुछ डाल देते थे। पूछने से ज्ञात हुआ कि इनका नाम मिर्ज़ा नसीरुल्मुल्क है, और यह बहादुरशाह के पोते हैं। सरकारी पेंशन ऋण में समाप्त कर दी, और अब चुपचाप भीख माँगने पर निर्वाह होता है। इनकी दशा लोगों को उपदेश-प्रद थी। जब इनकी प्रारंभिक कहानी, जो कुछ इन्होंने स्वयं सुनाई और कुछ अन्य राजकुमारों से ज्ञात हुई, तो हृदय काँप गया कि उस साधु का कहना पूरा हुआ, जिसकी टाँग में इन्होंने गुल्ला मारा था। राजकुमार का बाज़ार में घसिटते फिरना कड़े-से-कड़े हृदय को मोम कर देता था और परमात्मा के भय से हृदय काँप जाता था। अब इन राजकुमार की मृत्यु हो गई है।

तीसरा अध्याय

अनाथ राजकुमार के ठोकरें

माहेआलम एक राजकुमार का नाम था, जो शाहआलम बादशाह के धेवतों में से था। ग़दर में इसकी आयु केवल ग्यारह वर्ष की थी। राजकुमार माहेआलम के पिता मिर्ज़ा नौरोज़ हैदर अन्य राजवंशीय लोगों की भाँति बहादुरशाह की सरकार से सौ रुपए मासिक वेतन पाते थे; परंतु इनकी माँ के पास पुराने समय का बहुत-सा जमा किया हुआ धन था; इसलिये उनको इस रुपए की कोई विशेष चिंता न थी, और वह भारी वेतन पानेवाले राजकुमारों की भाँति निर्वाह करते थे। जब ग़दर हुआ, तो माहेआलम की माँ बीमार थीं। चिकित्सा होती थी; पर रोग प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। यहाँ तक कि ठीक उस रोज़, जब कि बहादुरशाह क़िले से निकले और शहर की संपूर्ण प्रजा दुखी होकर चारों ओर भागने लगी, माहेआलम की माता की मृत्यु हो गई। ऐसे घबराहट के अवसर पर सबको अपनी जान के लाले पड़े हुए थे। इस मृत्यु ने विचित्र प्रकार का दुःख उत्पन्न कर दिया। इस समय न कफ़न की सामग्री मिलना संभव था, और न गाड़ने का ही कोई प्रबंध हो सकता था; न स्नान करानेवाली स्त्री ही मिल सकती थी, और न कोई शव के समीप बैठनेवाला ही था। राजकुमारों में रीति हो गई थी कि वे शव के पास न जाते थे। सब काम पेशावरों से लिया जाता, जो इस समय के लिये सर्वदा उपस्थित तथा तैयार रहते थे। ग़दर की सर्वव्यापी आपत्तियों के कारण कोई आदमी ऐसा न था, जो अंत्येष्टि

करता। घर में दो परिचारिकाएँ थीं; पर वे भी शव को स्नान कराना नहीं जानती थीं। स्वयं मिर्ज़ा नौरोज़ हैदर यद्यपि पढ़े-लिखे पुरुष थे, तो भी ऐसा काम कभी न पड़ने के कारण वे इस्लामी ढंग की शव-स्नान-रीति से अनभिज्ञ थे।

इस प्रकार उन लोगों को इसी झमेले और कठिनाई में कई घंटे बीत गए। इतने में सुना कि अँगरेज़ी सेना शहर में घुस आई है और क़िले में घुसना ही चाहती है। इस समाचार से मिर्ज़ा के रहे-सहे होश भी जाते रहे और शीघ्र ही शव को पलँग पर ही कपड़े उतार-कर स्नान कराना प्रारंभ किया। स्नान क्या कराया—बस, पानी के लोटे भर-भरके ऊपर डाल दिए। कफ़न कहाँ से मिलता, शहर तो बंद था। पलँग पर बिछाने की दो स्वच्छ चादरें लीं, और उनमें शव को लपेट दिया। अब यह चिंता हुई कि शव को गाड़ें कहाँ? बाहर ले जाने का तो अवसर ही नहीं था। वह इसी सोच-विचार में थे कि गोरों और सिक्खों की सेना के कुछ सिपाही घर में आ गए, और आते ही मिर्ज़ा और उनके लड़के माहेआलम को पकड़ लिया। इसके उपरांत घर का सामान लूटने लगे। संदूक़ तोड़ डाले, आल-मारियों के किवाड़ उखाड़ दिए, पुस्तकों में आग लगा दी। दोनों परिचारिकाएँ स्नानागार में जा छिपी थीं। एक सिपाही की उन पर दृष्टि पड़ गई, जिसने देखते ही भीतर घुसकर उनके सिर के बाल पकड़े और बेचारियों को घसीटता हुआ बाहर ले आया। यद्यपि इन सिपाहियों को शव का पता चल गया था; परंतु, तो भी, उन्होंने उसकी तनिक भी पर्वा न की और बराबर लूट-मार करते रहे। अंत में बहुमूल्य सामान की गठरियाँ परिचारिकाओं और स्वयं मिर्ज़ा नौरोज़ हैदर और उनके लड़के माहेआलम के सिर पर रक्खीं और बकरियों की भाँति उनको हाँकते हुए घर से बाहर ले चले। उस समय मिर्ज़ा ने अपने लुटे हुए घर को करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखा,

और अपनी सहधर्मिणी के शव को अकेला चारपाई पर छोड़कर क्रूर सिपाहियों के साथ कूच किया।

परिचारिकाओं को तो बोझ उठाने और चलने-फिरने का अभ्यास था; मिर्ज़ा नौरोज़ हैदर भी हृष्ट-पुष्ट तथा तगड़े थे; विना थकान के बोझ सिर पर उठाए चल रहे थे ; परंतु बेचारे माहेआलम की बुरी दशा थी ; एक तो उसकी आयु और शक्ति की दृष्टि से उसके सिर पर बोझ अधिक था ; दूसरे वह स्वभाव से ही कोमल तथा दुर्बल था। इस पर सोने पर सुहागा यह हुआ कि माँ की मृत्यु का शोक था। रात से रोते-रोते आँखें सूज गई थीं। ख़ाली हाथ चलने से चक्कर आते थे। उधर सिर पर बोझ, पीछे चमकती हुई तलवारें और जल्दी चलने की प्रलयकारी आज्ञा थी। बेचारे के पैर लड़खड़ाते थे। दम चढ़ गया था। शरीर पसीना-पसीना हो गया था। अंत में बिलकुल लाचार होकर उसने पिता से कहा—"अब्बा! मुझसे तो चला नहीं जाता। गर्दन बोझ के मारे टूटी जाती है। आँखों के आगे अँधेरा आ रहा है। ऐसा न हो कि गिर पड़ूँ।"

बाप से अपने लाड़िले इकलौते बेटे की दुःख-भरी बातें न सुनी गईं। उसने मुड़कर सिपाही से कहा—"साहब, इस बच्चे का बोझ भी मुझको दे दो। यह बीमार है, गिर पड़ेगा।" गोरा मिर्ज़ा की भाषा तनिक भी नहीं समझा और ठहरने और बात करने को धृष्टता और कपट समझकर उसने दो-तीन मुक्के कमर में कस दिए और आगे को धक्का दे दिया। पीड़ित मिर्ज़ा ने मार भी खाई, परंतु ममता के मारे लड़के का बोझ बगल में ले लिया। गोरे को यह बात भी पसंद नहीं आई। उसने ज़बरदस्ती मिर्ज़ा से गठरी लेकर शाहेआलम के सिर पर रख दी, और एक घूँसा जीर्ण-शीर्ण शाहेआलम के भी मारा। घूँसा खाकर शाहेआलम "आह" कहकर गिर पड़ा, और बेहोश हो गया। मिर्ज़ा नौरोज़ अपने प्रिय पुत्र—हृदय के टुकड़े—की दशा देखकर ताव में आ गए। सामान फेंककर एक मुक्का गोरे के कपाल पर जमाया, और शीघ्र ही दूसरा घूँसा उसकी नाक पर मारा, जिससे गोरे की नाक का बाँसा फट गया और ख़ून का दरिया बहने लगा। सिक्ख सिपाही दूसरी ओर चले गए थे। इस समय केवल दो गोरे इन अभियुक्तों के साथ थे और इन्हें कैंप को लिए जा रहे थे। दूसरे गोरे ने अपने साथी की यह दशा देखकर मिर्ज़ा के एक संगीन मारी। परंतु परमात्मा की कृपा, संगीन का वार ओछा पड़ा, और वह मिर्ज़ा की कमर के पास से खाल छीलती हुई निकल गई। मुग़ल राजकुमार ने इस अवसर को सौभाग्य समझा, और लपककर एक मुक्का इस गोरे की नाक पर भी मारा। यह मुक्का भी ऐसा ठीक पड़ा कि नाक पिचक गई और ख़ून बहने लगा। गोरे इस दशा में पिस्तौल और किर्चें भूल गए, और एकसाथ दोनों-के-दोनों मिर्ज़ा को चिपट गए और घूँसों से प्रहार करने लगे। परिचारिकाओं ने जो यह स्थिति देखी, तो सामान फेंक मार्ग की धूल मुट्ठियों में भर गोरों की आँख में भर दी। फल-स्वरूप गोरे थोड़ी देर के लिये बेकार हो

गए, और उनकी किर्च मिर्ज़ा के हाथ आ गई। मिर्ज़ा ने शीघ्र ही किर्च घसीट ली और एक ऐसा भरपूर हाथ मारा कि किर्च ने कंधे से छाती तक काट डाला। इसके उपरांत दूसरे गोरे पर आक्रमण किया, और उसे भी यमपुरी भेज दिया। इन दोनों का वध करके उन्होंने माहेआलम की सुध ली। वह पूर्णतया बेहोश था। बाप के गोद में लेते ही उसने आँखें खोल दीं, और बाहें गले में डालकर रोने लगा। मिर्ज़ा इसी दशा में थे कि पीछे से दस-बारह गोरे और सिक्ख सिपाही आ गए, और उन्होंने अपने दो साथियों को ख़ून में तराबोर देखकर मिर्ज़ा को घेर लिया और लड़के से अलग करके कारण पूछा। मिर्ज़ा ने संपूर्ण घटना ज्यों-की-त्यों कह दी। सुनते ही गोरे क्रोध में आपे से बाहर हो गए। उन्होंने पिस्तौल के छः फ़ायर एकदम कर दिए, जिनसे घायल होकर मिर्ज़ा गिर पड़े, और बात-की-बात में तड़पकर मर गए। मिर्ज़ा नौरोज़ के शव को वहीं छोड़ दिया गया और माहेआलम को परिचारिकाओं के समेत वे पहाड़ी के कैंप में ले गए।

जब दिल्ली पूर्णतया विजित हो गई, तब वे परिचारिकाएँ तो पंजाबी कर्मचारियों को दे दी गईं और माहेआलम एक अँगरेज़ अफ़सर का सेवक बनाया गया। जब तक वह अफ़सर दिल्ली में रहा, माहेआलम को अधिक कष्ट न था; क्योंकि साहब के पास कई ख़ानसामे और नौकर थे। इसलिये उसे अधिक काम-काज न करना पड़ता था। परंतु, कुछ दिनों के बाद, यह साहब छुट्टी लेकर विलायत चले गए, और माहेआलम को एक दूसरे अफ़सर के अधीन कर गए, जो मेरठ-छावनी में था। उस अफ़सर का स्वभाव कड़ा था। बात-बात में ठोकरें मारता था। माहेआलम इस मारधाड़ को सह न सका, और एक दिन भागने का विचार किया। बस, पिछली रात को घर से निकला। पहरेदार ने टोका, तो कह दिया कि अमुक साहब का

नौकर हूँ, और उनके काम को अमुक गाँव में जाता हूँ, जिससे प्रातःकाल ही पहुँच जाऊँ। इस बहाने से जान बचाई और जंगल का रास्ता लिया।

अल्पवयस्क, मार्ग से अनभिज्ञ, और पकड़े जाने का भय—इस प्रकार माहेआलम की स्थिति बड़ी बुरी थी। परंतु इसी सोच-विचार में प्रातःकाल होते-होते मेरठ से तीन-चार कोस की दूरी पर निकल गया। सामने गाँव था। वहाँ जाकर एक मसजिद में ठहर गया। मुल्ला साहब ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। तू कौन है? कहाँ से आया है? कहाँ जायगा? माहेआलम ने इनको बातों में टाला। यहाँ एक साधु भी ठहरे हुए थे। उन्होंने जो इसकी सौम्य आकृति देखी, तो प्रेम से समीप बुलाया और रात की बची हुई रोटी सामने रक्खी। माहेआलम ने शाह साहब को हमदर्द पाकर अपनी कष्टकथा प्रारंभ से अंत तक सुनाई। शाह साहब उसकी आप-बीती सुनकर रोने लगे। माहेआलम को छाती से लगाकर प्यार किया, धैर्य देने लगे, और उससे अपने साथ रहने को कहा। उन्होंने एक रंगीन कुर्ता उसको पहना दिया और साथ लेकर चल खड़े हुए। दो-चार रोज़ तो मार्ग में माहेआलम थका और शाह साहब से ठहरने को कहता। वे दोनों इस प्रकार गाँवों में ठहर जाते। परंतु फिर माहेआलम भी अभ्यस्त हो गया, और पूरा पड़ाव चला जाता। महीने-भर में वह अजमेर पहुँच गए। यहाँ उसको शाह साहब के गुरु, जो बग़दाद के रहनेवाले थे, मिले। इन गुरु महाराज को जब माहेआलम का समाचार ज्ञात हुआ, तो उन्होंने भी कृपा-भाव दर्शाया, और उन दोनों को साथ लेकर बंबई चले गए। बंबई के समीप ही शाह साहब रहते थे। उन्होंने माहेआलम को भी वहीं रक्खा। माहेआलम ने वहाँ धार्मिक पुस्तकें पढ़ीं। तब शाह साहब ने उसका विवाह एक साध्वी कन्या से करा दिया, और उन्होंने वहीं रहना स्वीकार कर लिया।

चौथा अध्याय

राजकुमारी की विपत्ति

"होने को तो सिपाही-विद्रोह पचास वर्ष की कहानी है, परंतु मुझसे पूछो, तो कल की-सी बात ज्ञात होती है। उन दिनों मेरी आयु सोलह-सत्रह वर्ष की थी। मैं अपने भाई से दो वर्ष छोटी और मरनेवाली बहन नाज़बानू से छः साल बड़ी हूँ। मेरा नाम सुल्तान बानू है। मेरे पिता मिर्ज़ा क़वीश बहादुर श्रीमान् सम्राट् बहादुरशाह के पुत्र थे। भाई याबुरशाह और हम बहनों में बड़ा प्रेम था। बस, एक दूसरे पर मुग्ध थे। छोटे भाई के लिये बाहर कई अध्यापक भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें सिखाते थे। कोई हाफ़िज़ था, कोई मौलवी, कोई सुलेखक था, तो कोई धनुषधारी। हम महल में सीना पिरोना और कसीदा काढ़ना मुग़ल्लानियों से सीखती थीं। उस समय यह रीति थी कि श्रीमान् सम्राट् महोदय जिन बच्चों और बड़ों पर विशेष कृपा रखते थे, उनको प्रातःकाल का भोजन राजसी थालों में उनके साथ खिलाया जाता था। श्रीमान् सम्राट् मुझे भी बहुत चाहते थे, और मैं सर्वदा प्रातःकाल के भोजन के लिये बुलाई जाती थी। जब मैंने होश सँभाला, और चचा अबूबकर के लड़के मिर्ज़ा सुहराब से मेरा संबंध ठहर गया, तो श्रीमान् के साथ भोजन करने में मुझे लज्जा आती थी; क्योंकि वहाँ मिर्ज़ा सुहराब भी खाना खाने आया करते थे। यद्यपि हमारे संपूर्ण कुटुंब में पारस्परिक पर्दा न था, और न अब है, तथापि मैं अपने स्वभाव से लाचार थी। मैं एक क्षण-भर के लिये भी पर-पुरुष के सम्मुख न रह सकती थी। पर क्या करती? श्रीमान् की आज्ञा के विरुद्ध, श्रीमान् के साथ भोजन

करने किस प्रकार न जाती? परंतु संतोष की बात यही थी कि श्रीमान सम्राट् के कारण सब लोग अपनी दृष्टि नीचे रखते थे। मजाल न थी कि एक बच्चा भी इधर-उधर देखे, या ज़ोर से बोले।

यह नियम था कि जब श्रीमान कोई विशेष भोजन किसी को देते, तो वह बच्चा हो या युवा, स्त्री हो या पुरुष, अपने-अपने स्थान से उठकर मान-स्थान पर जाता, और झुककर तीन बार प्रणाम करता। एक दिन मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। श्रीमान् ने एक नवीन प्रकार का ईरानी खाना मुझे कृपा-पूर्वक दिया, और कहा—"सुलताना! तू तो कुछ खाती ही नहीं। शिष्टाचार और लज्जा एक सीमा तक अच्छे होते हैं, न कि यह भूका ही उठ जाय।" मैं खड़ी हुई और मान-स्थान पर जाकर तीन बार प्रणाम किया। परंतु कुछ न पूछो, इस कठिनाई में आई-गई कि हृदय ही जानता है। प्रत्येक पग पर उलझती थी, और मेरे होश उड़े जाते थे।

अब मैं सोचती हूँ कि वह समय क्या था, और वे आनंद के दिन कहाँ चले गए, जब हम अपने महलों में स्वतंत्र और निश्चिंत रूप से फिरा करते थे, श्रीमान् सम्राट् की छत्रच्छाया में थे, और लोग हमें संसार की राजकुमारियाँ कहकर पुकारते थे। संसार के उतार-चढ़ाव ऐसे ही होते हैं।

मुझे भली भाँति स्मरण है कि जब श्रीमान सम्राट् हुमाऊँ के मक़बरे में गिरफ़्तार किए गए, तो मिर्ज़ा सुहराब तलवार घसीटकर दौड़े। परंतु दूसरे गोरे ने इनके गोली मार दी, वह आह करके गिर पड़े, और तड़पकर ठंडे हो गए। मैं मूर्ति बनी तमाशा देखती रही। इतने ही में हमारा नौकर आया, और कहने लगा—"राजकुमारी, आप यहाँ क्यों खड़ी हैं? चलिए, आपके पिताजी ने आपको बुलाया है।" मैं इसी बेसुधी की हालत में उसके साथ हो ली। जलमार्ग से उतरकर देखा, पिताजी—मिर्ज़ा क़वीश बहादुर—घोड़े पर सवार

नंगे सिर खड़े हैं, संपूर्ण मुख और सिर के बाल धूलि-धूसरित हो रहे हैं। मुझे देखते ही आँसू भर लाए, और कहा—"लो राज-कुमारी, अब हमारा भी कूच है। जवान बेटा, जिसके विवाह की मनोकामना थी, आँखों के सामने एक सिक्ख की संगीन का निशाना बन गया।" यह सुनते ही मैंने एक चीख़ मारी, और "हाय भाई यावर!" कहकर रोने लगी। वह घोड़े से उतर आए। मुझको और नाज़बानू को गले लगाकर प्यार करने लगे, और संतोष देने लगे। कहा—"बेटी! अब लोग मेरी तलाश में हैं। मैं भी दो-चार घड़ी का मेहमान हूँ। परमात्मा भला करे, तुम युवती और समझदार हो। अपनी छोटी बहन को ढाढ़स दो, और आनेवाली आपत्तियों पर संतोष करो। पता नहीं, इसके उपरांत क्या होनेवाला है। जी तो नहीं चाहता कि तुमको अकेली छोड़कर कहीं जाऊँ, पर एक-न-एक दिन तुमको बिना बाप का बनना ही पड़ेगा। नाज़बानू तो अभी बच्चा है। इसको प्रसन्न रखना, और भलाई से जीवन व्यतीत करना। देखो नाज़बानू! तुम अब राजकुमारी नहीं हो, किसी वस्तु के लिये हठ न करना। जो मिले, उसे, परमात्मा को धन्य-बाद देकर, खा लेना। और, यदि कोई व्यक्ति कुछ खाता हो, तो आँख उठाकर उधर न देखना; नहीं तो लोग कहेंगे कि राजकुमारियाँ बड़ी बुरी नीयत की होती हैं।" फिर हम दोनों को नौकर की संरक्षकता में करके कहा—"इनको जहाँ हमारे कुटुंब के अन्य आदमी हों, पहुँचा देना।" इसके उपरांत उन्होंने हमको प्यार किया, और रोते हुए घोड़ा दौड़ाते जंगल में घुस गए। फिर पता न लगा कि उनका क्या हुआ। नौकर हमको ले चला। इसने हमारे घर का बचपन से नमक खाया था। थोड़ी दूर तक नाज़बानू, जो नख़रों और लाड़-प्यार में पली हुई थी, चली; परंतु फिर उसकी पैरों की शक्ति ने जवाब दे दिया। उसके लिये दो पग चलना भी कठिन हो गया। मुझको भी कभी पैदल चलने

का अवसर न पड़ा था। थोड़ी-थोड़ी दूर पर ठोकरें खाती थी; परंतु बानू को लिए चली जाती थी। इतने में नाज़बानू के एक तीक्ष्ण काँटा चुभ गया, और वह "हाय" कहकर गिर पड़ी। मैंने शीघ्रता से उसे उठाया, और काँटा निकालने लगी। परंतु निपूता नौकर खड़ा देखता रहा, और उससे यह न हुआ कि मेरा हाथ बटा लेता, वरन् वह जल्दी करने लगा। बहन बोली—"दीदी, मुझसे पैदल नहीं चला जाता। नाज़िर को भेजकर घर से पालकी मँगा लो।" घर और पालकी का नाम सुनकर मेरा हृदय भर आया। उसको सांत्वना देने लगी। नौकर ने फिर कहा—"चलो, बस, हो चुका। जल्दी चलो।" नाज़बानू का स्वभाव तीक्ष्ण था। वह नौकरों को ऊँच-नीच कह दिया करती थी, और ये लोग चुपचाप सुन लेते थे। इसी विचार से उसने नौकर को फिर दो-एक बातें सुना दीं। अभागे को सुनते ही इतना क्रोध आया कि आपे से बाहर हो गया, और बड़ी निर्दयता से बिना माँ-बाप की दुखिया बच्ची के एक तमाचा मारा। बानू बिलबिला गई। वह कभी फूल की छड़ी से भी न पिटी थी। उसके रोने से मुझको भी स्वभावतः रोना आ गया। हम तो रोते रहे, और नौकर कहीं चला गया। फिर उसका कोई समाचार न मिला। हम दोनों, बड़ी कठिनाई से, गिरते-पड़ते दरगाह निज़ामुद्दीन में पहुँचे। यहाँ दिल्ली के और स्वयं हमारे कुटुंब के सैकड़ों आदमी थे। परंतु प्रत्येक अपनी-अपनी मुसीबत में गिरफ़्तार था। किसी ने बात तक न पूछी। इसी बीच बीमारी फैली, और प्यारी बहन नाज़बानू इसी के कारण इस संसार से चल बसी। मैं अकेली रह गई। जब शांति हुई, तब भी मुझे [illegible] मिला। अंत में परमात्मा की इच्छा ऐसी हुई कि ब्रिटिश-सरकार ने हम लोगों का पालन-पोषण करना चाहा। मेरी पाँच रुपया मासिक पेंशन नियत कर दी, जो अब भी मिलती है।"

पाँचवाँ अध्याय

एक शाही कुटुंब की कहानी

जब दिल्ली सजीव थी, और भारतवर्ष का हृदय कहलाने का गर्व रखती थी, जब लाल क़िले पर मुग़लों का अंतिम झंडा लहरा रहा था, उन्हीं दिनों की बात है कि मिर्ज़ा सलीम बहादुर (जो अबूग़फ़र राजा के भाई थे, और ग़दर से पूर्व एक आकस्मिक भूल के कारण बंदी बनाकर इलाहाबाद भेज दिए गए थे) अपने मकान में बैठे बेखटके बातें कर रहे थे कि इतने में अंतःपुर से एक बाँदी आई, और उसने बड़े विनय से प्रार्थना की—"श्रीमन्, बेगम साहबा याद करती हैं।" मिर्ज़ा सलीम शीघ्र ही महल में चले गए, और थोड़ी देर में मलिन मुख वापस आए। एक पास के बैठनेवाले ने पूछा—"कुशल तो है?" मिर्ज़ा ने मुसकिराकर उत्तर दिया—"नहीं, कुछ नहीं। कभी-कभी माँ यों ही क्रुद्ध हो जाया करती हैं। कल सायंकाल को रोज़ा खोलने के समय नत्थनख़ाँ नाम-मात्र को गा रहा था, और मेरा जी बहला रहा था। उस समय माताजी क़ुरान-शरीफ़ पढ़ा करती हैं, उनको यह हो-हल्ला बुरा मालूम हुआ। आज आज्ञा हुई है कि रोज़ों के दिन गाने-बजाने की महफ़िलें बंद कर दी जायँ। भला मैं इस आमोद-प्रमोद के स्वभाव को कैसे छोड़ सकता हूँ? शिष्टाचार और मान के नाते आज्ञा स्वीकार तो कर ली; पर इस आज्ञा-पालन की उलझन से जी उलझता है, और सोच रहा हूँ कि ये सोलह दिन कैसे कटेंगे!"

इस बात को सुनकर एक पास बैठनेवाले ने प्रार्थना की—"घबड़ाने की कोई बात नहीं। रोज़ा खोलने से पहले श्रीमान् जुम्मा-मसजिद

पधारा करें। बड़ा आनंद मिलेगा। भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति वहाँ एकत्र होते हैं।" मिर्ज़ा ने इस बात को मान लिया और दूसरे दिन साथियों को लेकर जुम्मा-मसजिद पहुँचे। वहाँ जाकर विचित्र ही बात देखी। स्थान-स्थान पर मंडली बनाए लोग बैठे हैं। कहीं क़ुरान के दौर हो रहे हैं; कहीं क़ुरान सुनानेवाले हाफ़िज़ एक दूसरे को क़ुरान सुना रहे हैं, कहीं धार्मिक सिद्धांतों पर वार्तालाप हो रहा है। दो विद्वान किसी धार्मिक विषय पर वाद-विवाद कर रहे हैं, और बीसों आदमी आनंद से बैठे सुन रहे हैं। किसी स्थान में लोग समाधि के चारों ओर बैठे हैं, तो कहीं कोई जप कर रहा है। इस प्रकार मसजिद में धार्मिकपुरुषों की भीड़ है। मिर्ज़ा को यह दृश्य बहुत ही भाया, और समय बड़े आनंद से कट गया। इतने में रोज़ा खोलने का समय आ गया। सैकड़ों थाल भोजनों के आने लगे, और लोगों में भोजन-सामग्री बटने लगी। स्वयं शाही महल से भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से भरे अनेकों थाल जुम्मा-मसजिद में आते थे। इसके अतिरिक्त क़िले की सब राज-कुमारियाँ और शहर के सब अमीर अलग-अलग अपने थाल भेजते थे। इसके लिये इन थालों की संख्या सैकड़ों तक पहुँच जाती थी।

प्रत्येक अमीर ऐसा सामान भेजा करता था, जो दूसरे से बढ़कर रहे। इसलिये भिन्न-भिन्न रंग के रेशमी रूमाल और उनकी बहुमूल्य ज़री की झालरें एक-से-एक बढ़-चढ़कर होती थीं, और मसजिद में उनके कारण एक विचित्र ही दृश्य हो जाता था।

मिर्ज़ा के हृदय पर इस धार्मिक चर्चा का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह अब प्रतिदिन मसजिद में आने लगे। घर में वह देखते कि सैकड़ों फ़क़ीरों को प्रातः और सायंकाल का भोजन प्रतिदिन मसजिद और अन्य साधुओं के स्थान में भिजवा दिया जाता था, और यद्यपि वे घर में खेल-तमाशों में ही लीन रहते थे, तो भी उनके दिन घर में बड़े आनंद और चहल-पहल से कटते थे।

मिर्ज़ा सलीम के एक भांजे मिर्ज़ा शहज़ोर, अल्पवयस्क होने के कारण, अपने मामा के साथ बेरोक-टोक बैठा करते थे। उनका बयान है—"एक तो वह समय था, जो आज स्वप्नवत् स्मरण आता है, और एक यह समय आया कि दिल्ली मटियामेट हो गई, क़िला नष्ट कर दिया गया, और अमीरों को फाँसियाँ मिल गईं। इनके घर उजड़ गए, इनकी श्रीमतियाँ बावर्चीगीरी करने लगीं। दिल्ली की सब शान धूल में मिल गई। इसके उपरांत एक बार रमज़ान के महीने में जुम्मा मसजिद जाने का अवसर हुआ। क्या देखता हूँ कि स्थान-स्थान पर चूल्हे बने हुए हैं। सिपाही रोटी बना रहे हैं। घोड़ों का दाना दला जा रहा है। घास के ढेर लगे हुए हैं। शाहजहाँ की सुंदर और अद्वितीय मसजिद अस्तबल में बदल गई है, और फिर जब मसजिद उजाड़ हो गई, और सरकार ने उसको मुसलमानों के सिपुर्द कर दिया, तो रमज़ान के महीने में फिर जाना हुआ। वहाँ देखा, कुछ मुसलमान मैले-कुचैले, थेगरा (पैबंद) लगे कपड़े पहने बैठे हैं। दो-चार क़ुरान-शरीफ़ का दौर कर रहे हैं, और कुछ विक्षिप्तावस्था में बैठे जप कर रहे हैं। रोज़ा खोलने के समय कुछ आदमियों ने खजूरें और दालसेव बाँट दिए। किसी ने शाक के टुकड़े बाँट दिए। न वह पहला-सा सामान था, न वह पहली-सी चहल-पहल और न वह पहली-सी शान ही। यह प्रतीत होता था कि दुर्दैव के मारे कुछ लोग एकत्र हो गए हैं। इसके उपरांत भारत का आधुनिक कंगाली का समय भी देखा। यदि यही दशा रही, तो परमात्मा जाने, भारतवर्ष की क्या दशा होगी।"

मिर्ज़ा शहज़ोर की बातें बड़ी भावुक और प्रभावोत्पादक होती थीं। एक दिन ख़्वाजा हसन निज़ामी ने उनसे ग़दर की कहानी और पतन की कथा सुननी चाही। वह आँखों में आँसू भर लाए, और बयान करने में असमर्थता प्रकट की। परंतु आग्रह करने पर उन्होंने अपनी दुःखांत कहानी इस प्रकार सुनाई—

"जब अँगरेज़ी तोपों, किर्चों, संगीनों और प्रबल भेद-नीति ने हमारे हाथों से तलवारें छीन लीं, तब मुकुट सिर से उतार लिया, गद्दी पर अधिकार कर लिया। शहर में प्रलयकारी गोलियों की वृष्टि हो चुकी। सात परदों में रहनेवाली कुल-ललनाएँ मुँह खोले बाज़ार में अपने कुटुंबियों की तड़पती लाशों को देखने निकल आईं। छोटे पितृहीन बच्चे, अब्बा-अब्बा, पिताजी-पिताजी चिल्लाते हुए निराश्रय होकर फिरने लगे। श्रीमान् सम्राट् महोदय, जिन पर हम सबका सहारा था, क़िला छोड़कर निकल गए। उस समय मैंने भी अपनी बूढ़ी माता, बालिका बहन और गर्भवती स्त्री को साथ लाकर और उनका नायक बनकर घर से कूच किया। हम लोग दो रथों में सवार थे। सीधे ग़ाज़ियाबाद की ओर गए। परंतु शीघ्र ही ज्ञात हुआ कि वहाँ का मार्ग अँगरेज़ी सेना का युद्ध-स्थल है। इसलिये शाहदरे से लौटकर क़ुतुब को चले, और वहाँ पहुँचकर रात्रि को आराम किया। इसके उपरांत प्रातःकाल आगे को चले। छतरपुर के समीप गूजरों ने आक्रमण किया, और सब सामान लूट लिया। परंतु इतनी कृपा की कि हमको जीवित छोड़ दिया। वह भयंकर जंगल, तीन स्त्रियों का साथ, और स्त्रियाँ भी कैसी—एक बुढ़ापे से लाचार, दो पग चलना कठिन, दूसरी गर्भवती और बीमार, तीसरी दस वर्ष की भोली बालिका। वे रोती थीं। मेरा हृदय इनके विलाप से फटा जाता था। माँ कहती थीं—"भगवन्! हम कहाँ जायँ? किसका सहरा ढूँढ़ें। हमारा मुकुट और गद्दी लुट गई। तू फटा बोरिया और शांत स्थान तो दे। इस बीमार पेटवाली को लेकर कहाँ बैठूँ! इस निर्दोष बालिका को किसके [illegible] कर दूँ। जंगल के वृक्ष भी हमारे वैरी हैं। कहीं शरण-स्थान दिखाई नहीं देता।" बहन की यह दशा थी कि सहमी हुई खड़ी हम सबका मुँह ताकती थी। मुझे उसकी भोली आकृति पर बड़ी दया आती थी। अंत में लाचार होकर मैंने स्त्रियों को ढाढ़स बँधाया, और

आगे चलने के लिये प्रोत्साहित किया। गाँव सामने दृष्टिगोचर होता था। अबला स्त्रियों ने चलना प्रारंभ किया। माँ तो पग-पग पर

ठोकरें खाती और सिर पकड़कर बैठ जाती थीं। जब वह यह कहती—"भाग्य उनके ठोकरें मारता है, जो राजों के ठोकरें मारते थे। भवितव्यता ने उनको विवश कर दिया, जो दीन-हीन और निराश्रय लोगों के काम आते थे! हम मुग़लों के वंश के हैं, जिनकी तलवार से भूमंडल काँपता था। हम शाहजहाँ के घरवाले हैं, जिसने एक क़ब्र पर मणि-मोतियों की बहार दिखा दी।

हम भारत के सम्राट् के कुटुंबी हैं । हम आदरणीय थे । पृथ्वी पर हमें क्यों ठिकाना नहीं मिलता ? वह हमसे क्यों विद्रोह कर रही है ? आज हम पर आपत्ति है । आज हम पर आकाश रोता है, तो शरीर रोमांचित हो जाता है । अस्तु, बड़ी कठिनाई और कष्ट से गिरते-पड़ते गाँव में पहुँचे । यह गाँव मुसलमान मेवातियों का था । उन्होंने हमारा आतिथ्य किया, और अपनी चौपाल में हमको ठहराया । परंतु, वे कब तक हमारा भार उठा सकते थे ? उकता गए, और एक दिन मुझसे कहने लगे—"मियाँजी, चौपाल में एक बरात आनेवाली है । तू दूसरे छप्पर में चला जा, और तू बेकार ख़ाली बैठा क्या करता है । कुछ काम क्यों नहीं करता ?" मैंने कहा—"भाई, जहाँ कहोगे, वहीं जा पड़ेंगे । हमें चौपाल में ही रहने की कोई इच्छा थोड़े ही है । जब विधाता ने गगनचुंबी महल ही छीन लिया, तो इस कच्चे मकान के लिये हम क्या हठ करेंगे ? रही काम करने की बात, सो मेरा जी तो स्वयं ही घबड़ाता है । निठल्ले बैठे-बैठे चित्त उकताता है । मुझे कोई कार्य बताओ । हो सकेगा, तो ध्यान से करूँगा ।" उनका चौधरी बोला—"हमनें के बेरा (मुझे क्या पता) कि तू के (क्या) काम कर सके है ?" मैंने उत्तर दिया—"मैं सिपाही हूँ । बंदूक़-तलवार चलाना मेरा काम है । इसके अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं जानता ।" गँवार हँसकर कहने लगे—"ना बाबा, यहाँ तो हल चलाना होगा । घास खोदनी पड़ेगी । हमें तलवार से क्या काम ?" गँवारों के इस उत्तर से मेरी आँखों में आँसू भर आए । मैंने उत्तर दिया—"मुझे तो हल चलाना और घास खोदनी नहीं आती ।" मुझे रोता देख गँवारों को दया आ गई । वे बोले—"अच्छा, तू हमारे खेत की रखवाली किया कर और तेरी स्त्रियाँ हमारे गाँव के कपड़े सी दिया करें । फ़सल पर तुझको अन्न दे दिया करेंगे, जो तेरे लिये वर्ष-भर को काफ़ी होगा ।" बस, यही हुआ । मैं

दिन-भर खेत पर जाकर पक्षियों को उड़ाया करता था, और घर में स्त्रियाँ कपड़े सीती थीं। एक बार ऐसा हुआ कि भादों का महीना आया, और गाँव में सबको ज्वर आने लगा। मेरी भार्या और भगिनी को भी ज्वर ने आ दबाया। वह गाँव, वहाँ ओषधि और वैद्य का क्या ठिकाना! स्वयं लोट-पोटकर अच्छे हो जाते हैं। परंतु मैं ओषधियाँ खाने का अभ्यस्त था। घोर कष्ट उठाना पड़ा। इसी दशा में एक दिन मूसलाधार पानी पड़ा, और जंगल का नाला चढ़ आया। गाँव में कमर-कमर पानी हो गया। गाँववाले तो ऐसी परिस्थितियों को भुगत लेते थे; परंतु हमारी दशा इस बाढ़ के कारण बड़ी भयावह हो गई। बाढ़ रात्रि में आई थी, इसलिये हमारी चारपाइयाँ पानी में डूब गई थीं। स्त्रियाँ चीख़ें मारने लगीं। अंत में बड़ी कठिनाई से छप्पर की बल्लियों में दो चारपाइयाँ अड़ाकर स्त्रियों को इन पर बैठाया। पानी घंटे-भर में उतर गया। परंतु अन्न और ओढ़ने-बिछाने के कपड़े सब भीग गए। गत रात्रि को मेरी स्त्री के प्रसूति-पीड़ा प्रारंभ हुई, और साथ ही शीत से ज्वर भी आ गया। उस समय का कष्ट अवर्णनीय है। अँधेराघुप, मेह की झड़ी! कपड़े सब गीले हो गए। आग का सामान मिलना असंभव था। आश्चर्य में थे कि परमात्मन्, क्या प्रबंध किया जाय? पीड़ा बढ़ी। रोगिणी की दशा बड़ी शोचनीय हो गई। वह तड़पने लगी, और तड़पते-तड़पते प्राण दे दिए। बालक पेट में ही रहा। प्रातःकाल होते ही गाँववालों को पता चला। उन्होंने कफ़न का प्रबंध किया और मध्याह्न तक यह राजकुमारी सर्वदा के लिये क़ब्र में सो गई। अब हमको खाने की चिंता हुई। अन्न सब भीगकर सड़ गया था। गाँव-वालों से भी माँगते संकोच होता था। वे भी हमारी भाँति उसी आपत्ति में फँसे हुए थे। फिर भी गाँव के चौधरी को स्वयं ही ख़याल हुआ, और उसने क़ुतुब से एक रुपए का आटा मँगवा दिया। वह

आटा आधा ही समाप्त हुआ होगा कि रमज़ान का चंद्रमा दिखाई पड़ने लगा। माताजी का हृदय बड़ा ही कोमल था। वह सर्वदा पुराने काल का स्मरण किया करती थीं। रमज़ान का चंद्रमा देखकर उन्होंने एक ठंडी साँस ली, और चुप हो गईं। मैं समझ गया कि इनको पुराना समय स्मरण हो आया। मैं धैर्य की बातें करने लगा, जिससे उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ। चार-पाँच दिन तो आराम से कटे, परंतु जब आटा समाप्त हुआ, तो बड़ी आपत्ति आई। किसी से माँगने में लज्जा आती थी। पास एक कौड़ी न थी। शाम को पानी से रोज़ा खोला। भूख के मारे कलेजा मुँह को आता था।

माताजी का स्वभाव था कि इस प्रकार की कष्ट-कथा को दुहरा कर रोया करती थीं। पर उस दिन वह बड़ी शांत थीं। उनकी शांति और संतोष से मुझे बड़ा सहारा हुआ, और छोटी बहन को, जिसके मुख पर भूख के मारे हवाइयाँ उड़ रही थीं, धैर्य बँधाने लगा। वह भोली बालिका भी मेरे समझाने से निश्चिंत होकर चारपाई पर जा पड़ी, और थोड़ी देर में सो गई। भूख में निद्रा कहाँ आती थी? बस, एक खड्डूसे में पड़ी हुई थी। इसी शोचनीय दशा में प्रभात हुआ। माताजी उठीं, और प्रातःकाल की नमाज़ के उपरांत जिन दुःख-भरे वाक्यों में उन्होंने प्रार्थना की, उनके मार्मिक शब्दों का तो मुझे स्मरण नहीं, हाँ, उनका तात्पर्य यह था—हमने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिसका दंड हमको मिल रहा है? रमज़ान के महीने में हमारे घर से सैकड़ों दीनों को भोजन मिलता था, और आज हम स्वयं दाने-दाने को तरसते और व्रत-पर-व्रत रखते हैं। भगवन्! यदि हमने कोई पाप किया है, तो इस भोली बालिका ने क्या पाप किया, जिसके मुँह कल से एक खील उड़कर नहीं गई।

दूसरा दिन भी यों ही बीता, और उपवास में रोज़ा रक्खा। सायं-काल को चौधरी का आदमी दूध और मीठे चावल लाया। बोला—

"आज हमारे यहाँ श्राद्ध था। यह उसका खाना है, और ये पाँच रुपए दान के हैं। प्रतिवर्ष बकरियाँ दान में दिया करते हैं, परंतु इस वर्ष नक़द दे दिया है।" भोजन और रुपया मुझको ऐसी देन प्रतीत हुई, मानो राज्य मिल गया हो। प्रसन्नता-पूर्वक माताजी के सम्मुख समाचार कहा। कहता जाता था और ईश्वर को धन्यवाद देता जाता था। पर यह ख़याल न रहा कि संसार-चक्र ने पुरुष के विचार पर तो पर्दा डाल दिया, परंतु स्त्री-जाति ज्यों-की-त्यों अपनी लज्जास्पद स्थिति पर दृढ़ होगी। बस, मैंने देखा, माताजी की आकृति बदली। यद्यपि वह कई दिन की भूकी थीं, और दुर्बल भी हो रही थीं, तो भी त्यौरी बदलकर उन्होंने कहा—"धिक्कार है तुझको! दान का सामान लेकर आया है, और प्रसन्न हो रहा है। अरे इससे तो मृत्यु कहीं अच्छी थी! यद्यपि हम मिट गए हैं, तो भी हमारी हरारत (उष्णता) नहीं मिटी। मैदान में निकलकर मर जाना या मार डालना और तलवार से रोटी लेना हमारा काम है, भीक माँगना नहीं।"

माताजी की इन बातों से मुझे पसीना आ गया, और लज्जा के मारे हाथ-पाँव ठंडे हो गए। विचार हुआ कि उठकर वह सामान लौटा आऊँ; परंतु माताजी ने रोका, और कहा—"परमात्मा की यही इच्छा है, तो हम क्या करें। सब कुछ सहना पड़ेगा।" यह कहकर खाना रख लिया। रोज़ा खोलने के उपरांत हम सबने मिलकर वह खा लिया। पाँच रुपए का आटा मँगवाया गया, जिससे रमज़ान आनंद से कट गया।

इसके उपरांत छः महीने गाँव में और रहे, फिर दिल्ली चले आए। यहाँ आकर माताजी का देहांत हो गया, और बहन का विवाह कर दिया। अँगरेज़ी सरकार ने मेरी भी पाँच रुपए मासिक पेंशन नियत कर दी है, जिस पर अब तक जीवन निर्भर है।"

छठा अध्याय

विपन्न बहादुरशाह

यह एक बेचारी भिखारिन की सच्ची कष्टकथा है, जो समय के फेर से उस पर बीती। उसका नाम कलसूम ज़मानी बेगम था। यह दिल्ली के अंतिम मुग़ल-सम्राट् अबूज़फ़र बहादुरशाह की लाड़िली बेटी थीं। कुछ वर्ष हुए, इनका देहांत हो गया। निम्न-लिखित घटनाएँ इनकी और इनकी बेटी ज़ीनत ज़मानी बेगम की, जो अब तक जीवित हैं और पंडित के कूचे में रहती हैं, बयान की हुई हैं। वे हृदय-विदारक घटनाएँ ये हैं—

"जिस समय मेरे पिताजी का शासन समाप्त हुआ, और उनकी गद्दी के लुटने का समय निकट आया, तो दिल्ली के लाल क़िले में एक कुहराम मचा हुआ था। चारों ओर आपत्ति के चिह्न अंकित थे। श्वेत और स्वच्छ संगमरमर के घर काले-काले दृष्टिगोचर होते थे। तीन समय से किसी ने कुछ न खाया था। ज़ीनत मेरी गोद में डेढ़ वर्ष का बच्चा थी, और दूध के लिये बिलखती थी। चिंता और भय के मारे न मेरे दूध रहा था, न किसी दाई के। हम सब नैराश्य की स्थिति में बैठे थे कि श्रीमान् सम्राट् महोदय का विशेष ख्वाजा सरा हमको बुलाने आया। आधी रात का समय था। सन्नाटा छा रहा था। गोलों की गरज से हृदय दहले जा रहे थे। परंतु राजसी आज्ञा मिलते ही चल पड़े। श्रीमान् सम्राट् महोदय प्रार्थना-स्थान पर विराजमान थे। माला हाथ में थी। जब मैं सम्मुख पहुँची, तो झुककर तीन बार प्रणाम किया। श्रीमान् ने बड़े ही प्रेम से समीप बुलाया, और कहने लगे—"कलसूम! लो, अब

तुमको परमात्मा को सौंपा। यदि भाग्य में बदा होगा, तो फिर देख लेंगे। तुम अपने पति को लेकर शीघ्र ही कहीं चले जाओ। मैं भी जाता हूँ। जी तो नहीं चाहता कि इस अंतिम समय में तुम बच्चों को आँख से ओझल होने दूँ, पर क्या करूँ? साथ रखने में तुम पर घोर विपत्ति आने की आशंका है। अलग रहोगी, तो कदाचित् परमात्मा कोई भलाई का ढंग कर दे।" इतना कहकर श्रीमान् ने प्रार्थना के लिये हाथ जोड़े। बुढ़ापे से हाथ काँपते जाते थे। बड़ी देर तक उच्च ध्वनि से प्रार्थना करते रहे—'ए परमात्मन्! ये असहाय बालक तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। ये महलों के रहनेवाले जंगल और बीहड़ में जाते हैं। संसार में इनका कोई सहायक नहीं रहा। अकबर के नाम की मर्यादा रखना। इन आश्रयहीन स्त्रियों के मान की रक्षा करना। परमात्मन्! यही नहीं, वरन् भारतवर्ष के सब हिंदू-मुसलमान मेरी संतान हैं, और आजकल सब पर आपत्ति छाई है। मेरे कार्यों की शामत से इनको नष्ट न कर, और सबको कष्टों से बचा।"

इसके उपरांत मेरे सिर पर हाथ रक्खा। ज़ीनत को प्यार किया, और मेरे पति मिर्ज़ा ज़ियाउद्दीन को कुछ मणि-मुद्रा देकर श्रीमती नूरमहल को भी साथ कर दिया, जो श्रीमान् की बेगम थीं।

पिछली रात को हमारा दल क़िले से निकला, जिसमें दो पुरुष और तीन स्त्रियाँ थीं। पुरुषों में एक मेरे पति मिर्ज़ा ज़ियाउद्दीन और दूसरे मिर्ज़ा उमरसुलतान महाराज के बहनोई थे। स्त्रियों में एक मैं, दूसरी नवाब नूरमहल, और तीसरी हाफ़िज़ सुलतान बादशाह की समधिन थीं। जिस समय हम लोग रथ में सवार होने लगे, प्रभात का समय था। तारागण सब छिप गए थे, परंतु प्रातःकाल का तारा झिलमिला रहा था। हमने अपने भरे-पुरे घर पर और शाही महलों पर अंतिम दृष्टि डाली, तो हृदय भर आया। और आँसू उमड़ने लगे। नवाब नूरमहल की आँखों में आँसू भरे

हुए थे, और पलकें उनके बोझ से काँप रही थीं। प्रभातकाल के तारे का झिलमिलाना नूरमहल की आँखों में दिखाई देता था।

अंत में लाल क़िले से सदा के लिये विदा होकर कुराली-गाँव में पहुँचे, और वहाँ अपने रथवान के मकान पर विश्राम किया। बाजरे की रोटी और छाछ खाने को मिली। उस समय भूक में ये चीज़ें शाही पकवानों से अधिक स्वादिष्ट प्रतीत हुईं। एक दिन और रात तो शांति से बीती; परंतु दूसरे दिन आसपास के जाट-गूजर एकत्र होकर कुराली को लूटने चढ़ आए। सैकड़ों स्त्रियाँ भी इनके साथ थीं, जो चिड़ियों की भाँति हम लोगों के चिपट गईं और सब गहने और कपड़े-लत्ते उन्होंने उतार लिए। जिस समय ये सड़ी-बुसी स्त्रियाँ अपने मोटे मोटे मैले हाथों से हमारे गले को नोचती थीं, तो उनके लहँगों से ऐसी बू आती थी कि दम घुटने लगता था।

इस लूट के उपरांत हमारे पास इतना भी न रहा, जो एक समय के खाने को भी यथेष्ट होता। आश्चर्य में थे कि क्या होगा। ज़ीनत प्यास के मारे रो रही थी। सामने से एक ज़मींदार निकला। बेबस होकर मैंने कहा—"भाई, थोड़ा पानी इस बच्ची को ला दे।" ज़मींदार शीघ्र ही एक मिट्टी के पात्र में पानी लाया, और बोला—"आज से तू मेरी बहन और मैं तेरा भाई।" यह ज़मींदार कुराली का खाता-पीता आदमी था। उसका नाम बस्ती था। उसने अपनी बैलगाड़ी तैयार कराके हमको सवार किया, और कहा—"जहाँ कहो, तुमको पहुँचा दूँ।" हमने कहा—"अजाड़ह, ज़िला मेरठ में, मीर फ़ैज़अली शाही हकीम रहते हैं, जिनसे हमारे वंश का व्यवहार है। वहाँ ले चल।" बस्ती हमें वहाँ ले गया। परंतु मीर फ़ैज़अली ने ऐसा रूखा व्यवहार किया कि जिसकी कोई सीमा नहीं। स्पष्ट रूप से उन्होंने कह दिया कि हम लोगों को रखकर वह अपना घर नष्ट करना नहीं चाहते।

वह समय बड़ी निराशा का था। एक तो यह भय कि पीछे से अँगरेज़ी सेना आती होगी। उस पर और घोर आपत्ति यह कि प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि हमसे फिरी हुई थी। वे लोग, जो हमारी आँखों के इशारे पर चलते और प्रत्येक समय देखते रहते थे कि हम जो कुछ आज्ञा दें, सो शीघ्र ही पालन की जाय, वही हमारे नाम से घबड़ाते और हमारी सूरत से अकुनाते थे। धन्य है बस्ती ज़मींदार को, जिसने केवल मुँह से बहन कहने को अंत तक निबाहा, और हमारा साथ न छोड़ा। लाचार अजाढ़ह से हैदराबाद की ओर चले। स्त्रियाँ बस्ती की गाड़ी में सवार थीं, और पुरुष पैदल चल रहे थे। तीसरे दिन एक नदी के किनारे पहुँचे, जहाँ कोइल के नवाब की सेना पड़ी हुई थी। उन्होंने जो सुना कि हम शाही घराने के आदमी हैं, तो बड़ी ही आव-भगत की और हाथी पर सवार कराके नदी के पार उतारा। अभी हम नदी के पार उतरे ही थे कि सामने से अँगरेज़ी सेना आ गई, और नवाब की सेना से लड़ाई होने लगी। मेरे पति और मिर्ज़ा उमरसुलतान ने चाहा कि नवाब की सेना में सम्मिलित होकर लड़ें; परंतु रिसालदार ने कहला भेजा कि हम स्त्रियों को लेकर शीघ्र ही चले जायँ। सामने ही खेत थे, जिनमें पकी हुई तैयार खेती खड़ी हुई थी। हम लोग इसके भीतर छिप गए। क्रूर गोरों ने पता नहीं देख लिया था या यों ही अकस्मात् गोली लगी, जो कुछ भी हो, एक गोली खेत में आ गई, जिससे आग भड़क उठी और संपूर्ण खेत जलने लगा। हम लोग वहाँ से निकलकर भागे। पर हा, कैसी आपत्ति थी! हमको भागना भी न आता था। घास में उलझ-उलझकर गिरते थे। सिर की चादरें वहीं रह गईं। सिर खुला हुआ, होश उड़े हुए। हज़ार कठिनाइयों से खेत के बाहर आए। मेरे और नवाब नूरमहल के पाँव घायल हो गए। प्यास के मारे जीभें बाहर निकल आईं। ज़ीनत बेहोश हो

गई। पुत्र हमें सँभालते थे; पर हमारा सँभालना कठिन था। नवाब नूरमहल तो खेत से निकलते ही चकराकर गिर पड़ीं, और बेहोश हो गईं। मैं ज़ीनत को छाती से लगाए अपने पति का मुँह ताक रही थी, और मन-ही-मन कह रही थी कि परमात्मन्, हम कहाँ जायँ। कहीं सहारा दिखाई नहीं पड़ता। भाग्य ऐसा पलटा कि राजा से रंक हो गए। पर भिखारियों को भी शांति और निश्चिंतता होती है। यहाँ वह भी नहीं थी।

सेना कटती हुई दूर निकल गई थी। बख़्ती नदी से पानी लाया। हमने लिया, और नवाब नूरमहल के मुख पर छिड़का। नूरमहल रोने लगीं, और बोलीं—"अभी, स्वप्न में, तुम्हारे पिताजी श्रीमान् सम्राट् महोदय को देखा है कि बेड़ियाँ पहने खड़े हैं, और कहते हैं, आज हम दोनों के लिये यह काँटों-भरा बिछौना मख़मल से बढ़िया है। नूरमहल घबराना नहीं। धैर्य से काम लेना। भाग्य में लिखा था, बुढ़ापे में ये कठिनाइयाँ भुगतूँ। तनिक मेरी कलसूम को दिखा दो। बंदीगृह में जाने से पूर्व उसको देखूँगा।" बादशाह की यह बात सुनकर मैं 'हाय' कहकर चिल्लाई और आँख खुल गई। कलसूम, क्या वास्तव में हमारे बादशाह को जंजीरों में जकड़ा होगा? क्या वास्तव में वह एक बंदी की भाँति बंदीगृह भेजे गए होंगे? मिर्ज़ा उमरसुल्तान ने इसका उत्तर दिया, यह सब स्वप्न है। बादशाह लोग बादशाहों के साथ ऐसा कुव्यवहार नहीं किया करते। घबराने की कोई बात नहीं। वह अच्छी दशा में होंगे। हाफ़िज़ सुल्तान, बादशाह की समधिन, बोलीं—"ये मुए फिरंगी राजों का मूल्य क्या जानें? स्वयं अपने राजा का सिर काटकर सोलह आने को बेचते हैं। बुआ नूरमहल! तुमने तो बादशाह को ज़ंजीर पहने देखा है। मैं कहती हूँ कि इससे अधिक अपमान और क्या होगा!" परंतु मेरे पति मिर्ज़ा ज़ियाउद्दीन ने आश्वासन और सांत्वना दी।

इतने में बस्ती नाव में गाड़ी को इस पार ले आया, और हम सवार होकर चल दिए। थोड़ी दूर जाकर सायंकाल हो गया, और हमारी गाड़ी एक गाँव में जाकर ठहरी, जिसमें मुसलमान और राजपूतों की आबादी थी। गाँव के नंबरदार ने एक छप्पर हमारे लिये ख़ाली करा दिया, जिसमें सूखी घास और फूस का बिछौना था। वे लोग इस घास पर, जिसको पयाल या पराल कहते हैं, सोते हैं। हम लोगों को बड़े ही आतिथ्य में यह नरम बिछौना दिया गया। मेरा तो इस कूड़े से जी उलझने लगा। पर क्या करते? इस समय इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता था? लाचार होकर इसी में पड़े रहे। दिन-भर के कष्ट और थकान के उपरांत शांति मिली थी, इसीलिये निद्रा आ गई। आधीरात को एकाएक हम सबकी आँख खुल गई। घास के तिनके सुइयों की भाँति शरीर में चुभ रहे थे, और पिस्सू काट रहे थे। उनके काटने से सब शरीर में आग-सी लग गई थी। मख़मली तकियों और रेशमी नरम-नरम बिछौनों के हम लोग अभ्यस्त थे। इसीलिये कष्ट प्रतीत हुआ, नहीं तो गाँव के आदमी आनंद से बेहोशी की नींद सो रहे थे। अँधेरी रात में चारों ओर गीदड़ों के बोलने का शब्द सुनाई पड़ रहा था, और मेरा हृदय सहमा जाता था। भाग्य को पलटते देर नहीं लगती। कौन कह सकता था कि एक दिन भारत-सम्राट् के बाल-बच्चे यों धूल-मिट्टी में बसेरा लेते फिरेंगे। इसी प्रकार एक-एक पड़ाव करके कष्टों को सहते हैदराबाद पहुँचे, और सीताराम-पेठ में एक मकान किराए पर लेकर ठहरे। जबलपुर में मेरे पति ने एक जड़ाऊ अँगूठी, जो लूट-खसोट से बच गई थी, बेची; उसी से मार्ग-व्यय चला। कुछ दिन वहाँ भी कटे। पर अंत में जो कुछ पास-पल्ले था, वह भी समाप्त हो गया। अब पेट भरने की चिंता हुई। मेरे पति बड़े अच्छे सुलेखक थे। इसलिये उन्होंने पैग़ंबर साहब की कथा को बहुत ही सुंदर अक्षरों में

लिखा। उनके अक्षरों को देखकर लोग दंग रह जाते थे। प्रथम दिन उनको पाँच रुपए मिले। और, इसके उपरांत जो कुछ वह लिखते, वह कमती बढ़ती दामों पर बिक जाता। इस प्रकार हमारा निर्वाह अच्छी तरह होने लगा। परंतु मूसा-नदी के चढ़ाव के भय से शहर में दारोग़ा अहमद के मकान में उठ आए। यह व्यक्ति निज़ाम का विशेष कर्मचारी था। इसके बहुत-से मकान किराए पर चलते थे।

कुछ दिनों तक यह समाचार फैला रहा कि नवाब लशकरजंग, जिसने राजकुमारों को अपने पास शरण दी थी, अँगरेज़ों के क्रोध का शिकार हुआ, और अब कोई भी दिल्ली के राजकुमारों को शरण न देगा ; वरन् जिस किसी को राजकुमारों का पता चलेगा, वह पकड़वाने का प्रयत्न करेगा। हम सब इस समाचार से घबरा गए। मैंने अपने पति को बाहर निकलने से रोक दिया कि कहीं कोई शत्रु पकड़वा न दे। घर में बैठे-बैठे भूकों मरने लगे, तो हार मानकर एक नवाब के लड़के को क़ुरान पढ़ाने की नौकरी मेरे पति ने कर ली। चुपचाप उसके घर जाते और पढ़ाकर आ जाते। परंतु उस नवाब का स्वभाव ऐसा बुरा था कि सदा साधारण नौकरों की भाँति मेरे पति के साथ व्यवहार करता। वह उनको असह्य था, और घर में आकर रो-रोकर वे प्रार्थना करते, भगवन्! इस निर्लज्ज नौकरी से तो मृत्यु लाखगुनी अच्छी। तूने इतना दीन बना दिया! कल तक इस नवाब-जैसे सैकड़ों हमारे दास थे, और आज हम इसके दास हैं।" इसी बीच में किसी ने मियाँ निज़ामुद्दीन साहब को हमारी ख़बर कर दी। मियाँ का हैदराबाद में बड़ा मान था; क्योंकि मियाँजी काले मियाँ साहब चिश्ती निज़ामी फ़ख़री के पुत्र थे, जिनको दिल्ली के बादशाह और निज़ाम अपना गुरु मानते थे। मियाँ रात के समय हमारे पास आए; हमको देखकर बहुत रोए। एक समय था, जब वह क़िले में आते थे, तो सोने और जड़ाऊ काम के तकियों के

सहारे बैठते थे, और स्वयं बेगम साहबा उनका आतिथ्य करती थीं। आज जब वह घर में आए, तो साबित बोरिया भी न थी, जिस पर वह आराम से बैठ जाते। पिछला काल आँखों में फिरने लगा। परमात्मा की इच्छा! क्या था और क्या हो गया! मियाँ बहुत देर तक समाचार पूछते रहे, फिर चले गए। प्रातःकाल समाचार आया कि उन्होंने ख़र्च का प्रबंध कर दिया है। हम लोग हज कर लें। यह सुनकर हमारी प्रसन्नता की सीमा न रही, और मक्के की तैयारी होने लगी। बस, हैदराबाद से चलकर बंबई आए, और अपने सच्चे साथी बस्ती को मार्ग-व्यय देकर उसके घर को लौटाया। जहाज़ में सवार हुए। जो यात्री यह सुनता था कि हम भूत सम्राट् के घराने के हैं, तो वह हमें देखने की इच्छा प्रकट करता। उस समय हम भगुए कपड़े पहने हुए थे। एक हिंदू ने, जिसकी कदाचित् अदन में दूकान थी, और जो हमसे अनभिज्ञ था, पूछा—"तुम लोग किस पंथ के फ़क़ीर हो?" उसके प्रश्न ने घायल हृदय को छेड़ दिया। मैं बोली—"हम पीड़ित शाह गुरु के चेले हैं। वही हमारा बाप था, और वही हमारा गुरु। पापी लोगों ने उसका घर-बार छीन लिया, और उसको हमसे अलग करके जंगलों में निकाल दिया। अब वह हमारे लिये तरसता है, और हम उसके दर्शनों के बिना बेचैन हैं।"

इससे अधिक और क्या अपनी फ़क़ीरी की दशा वर्णन करती। जब उसने हमारा वास्तविक समाचार जाना, तो बेचारा रोने लगा, और बोला—"बहादुरशाह हम सबके पिता और गुरु थे। क्या मेरे रामजी की यही इच्छा थी।" मक्के पहुँचे, तो वहाँ ठहरने का अच्छा प्रबंध हो गया। अब्दुलक़ादिर-नामी मेरा एक दास था, जिसको मैंने छुड़वाकर मक्के भेज दिया था। यहाँ आकर उसने बड़ा धन पैदा किया, और 'ज़मज़म'* का दारोग़ा हो गया; इसको जो हमारे आने का

* काबे के पास एक कुआँ है, जिसका नाम ज़मज़म है।

समाचार मिला, तो दौड़ा आया, और पैरों पर गिरकर ख़ूब रोया। इसका मकान बहुत अच्छा और आराम का था। हम सब वहीं ठहरे। कुछ दिनों के उपरांत सुल्तान रूम के प्रतिनिधि को, जो मक्के में रहता था, हमारा समाचार मिला। वह भी हमसे मिलने आया। किसी ने इससे कहा था कि दिल्ली के बादशाह की लड़की आई है, और बिना पर्दे के बातें करती है। प्रतिनिधि ने अब्दुल-क़ादिर के हाथ समाचार भेजा, जो मैंने स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन वह हमारे घर पर आया, और बड़े ही शिष्टाचार से बातचीत की। अंत में उसने इच्छा प्रकट की कि वह हमारे आने का समाचार ख़लीफ़ा को भेजना चाहता है। मैंने इसका यों ही उत्तर दे दिया कि अब हम बड़े सुल्तान के दरबार में आ गए हैं। अब हमें किसी दूसरे सुल्तान की चिंता नहीं है। प्रतिनिधि ने हमारे ख़र्च के लिये एक उचित धन-राशि नियत कर दी, और हम ९ वर्ष वहीं रहे। इसके उपरांत एक वर्ष बग़दाद, एक वर्ष नजफ़ और कर्बला में व्यतीत किया। इतने समय के उपरांत दिल्ली के प्रेम ने विह्वल कर दिया, और वहाँ से चलकर दिल्ली आ गए। यहाँ ब्रिटिश-सरकार ने बहुत भारी तरस खाकर दस रुपए मासिक पेंशन नियत कर दी। इस पेंशन का परिणाम सुनकर पहले तो मुझे हँसी आई कि मेरे बाप का देश लेकर दस रुपए बदले में देते हैं। परंतु, फिर ख़याल आया कि देश तो परमात्मा का है, किसी के बाबा का नहीं। वह जिसको चाहता है, दे देता है; जिससे चाहता है, छीन लेता है; मनुष्य की शक्ति कुछ भी नहीं है।

सातवाँ अध्याय

अनाथ राजकुमार की ईद

सन् १९१४ ई० की ईद की बात है। २९ का चाँद दृष्टिगोचर हुआ। दर्ज़ी प्रसन्न थे कि उनको एक दिन काम करने को मिल गया। जूतेवालों को भी प्रसन्नता थी कि एक दिन की बिक्री बढ़ गई।

परंतु एक गंदे मुहल्ले में मुग़ल-वंश का एक घराना उस दिन चिंतित था। ये लोग नमाज़ से पूर्व अपने वारिस मिर्ज़ा दिलदार-शाह को गाड़कर आए थे। दिलदारशाह दस दिन से बीमार थे; और पाँच रुपए मासिक इनको पेंशन मिलती थी। घर में इनकी स्त्री और यह गोटा बुनते थे, जिसमें उनको इतनी आय हो जाया करती थी कि निर्वाह भली भाँति हो जाता था। इनके चार संतानें थीं—तीन लड़कियाँ और एक लड़का। दो लड़कियों का विवाह हो गया था। एक डेढ़ साल की गोद में थी। एक लड़का दस वर्ष का था। दिलदारशाह इस लड़के को बहुत चाहते थे। बेगम ने बहुत चाहा कि लड़का पाठशाला में जाय; परंतु दिलदारशाह को बच्चा इतना प्यारा था कि उन्होंने एक दिन भी उसे पाठशाला न भेजा। लड़का दिन-भर गलियों में घूमा करता। उसकी ज़बान पर इतनी गालियाँ चढ़ गई थीं कि बात-बात में वह अपशब्द निकालता और पिताराम उसकी भोली-भाली बातों से प्रसन्न होते थे। मिर्ज़ा दिलदारशाह बहादुरशाह के समीप के कुटुंबी थे। मरते समय उनकी आयु ६५ वर्ष की होगी; क्योंकि ५५ वर्ष की अवस्था में उनके वह लड़का हुआ था। बुढ़ापे की संतान सबको प्यारी होती है, विशेष-

कर बैठा। इसलिये मिर्ज़ा दिलदारशाह जितना प्रेम करते थे, वह थोड़ा ही था।

एक दिन उनके मित्र ने कहा—"महाराय! बच्चे के लिखने-पढ़ने की यही अवस्था है। अब न पढ़ेगा, तो कब पढ़ेगा? लाड़-प्यार की भी एक हद होती है। आप इसके लिये काँटे बो रहे हैं। परमात्मा आपको चिरायु करे। जीवन का कोई भरोसा नहीं। एक दिन सबको मरना है। परमात्मा न करे, आपकी आँखें बंद हो गईं, तो इस नासमझ का कहीं ठिकाना न रहेगा। पढ़ लेगा तो, दो रोटियाँ कमा खायगा। आधुनिक काल में भलेमानसों की जीविका बड़ी कठिन हो गई है। कुछ भविष्य का विचार होना चाहिए। ऐसा न हो कि इसको दूसरों के सम्मुख हाथ फैलाना पड़े, और पूर्वजों की नाक कटे।" मिर्ज़ा दिलदारशाह इस सहानुभूति से बिगड़ गए, और बोले—"आप मेरे मरने के लिये अशकुन करते हैं। अभी मेरी ऐसी कौन-सी आयु हो गई है? लोग तो सौ-सौ वर्ष जीवित रहते हैं। रही बच्चे की पढ़ाई, सो मेरे निकट तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं। बड़े-बड़े बी० ए० एम० ए० मारे-मारे फिरते हैं, और उन्हें दो कौड़ी को कोई नहीं पूछता। मेरा बच्चा पहले ही सुआपंखी है। आए दिन रोगी रहता है। मेरा चित्त नहीं चाहता कि क्रूर अध्यापकों के अधीन करके उसकी कोमल हड्डियों को बेतों को निशाना बनाऊँ। जब तक मेरे दम में दम है, उससे आनंद कराऊँगा। मैं न रहूँगा, तो परमात्मा रक्षक है। वह चींटी तक को भोजन देता है, पत्थर के कीड़े तक को भोजन पहुँचाता है। आदमी के बच्चे को कहीं भूका मारेगा? मियाँ! हमने ज़माने का सब ऊँच-नीच देखा है। हमारे माँ-बाप ने भी हमको न पढ़ाया, तो क्या हम भूके मरते हैं?"

शिक्षा देनेवाले बेचारे यह उत्तर सुनकर चुप हो गए, और भीतर-ही-भीतर पछताए कि वृथा ही उनसे सहानुभूति की बात

कही। परंतु उन्हें ख़याल आया कि सत्य बात कहने से चुप रहना पाप है। सच्ची बात कहने से चुप रहनेवाला गूँगा शैतान है—इसीलिये उन्होंने फिर कहा—"महाशय ! आप क्रुद्ध न हों। मैं आपका मरना नहीं चाहता। मैंने तो दूरदर्शिता की बात कही थी। आपको बुरी लगी, तो क्षमा कीजिए। पर यह तो विचार कीजिए कि आपके बचपन में और बात थी, और आजकल का समय दूसरा ही है। उस समय क़िला बसा हुआ था, और श्रीमान् सम्राट् की छत्रच्छाया थी। प्रत्येक बात से निश्चिंत थे। परंतु आज तो कुछ भी नहीं। न बादशाही है और न अमीरी। प्रत्येक के घर में फ़क़ीरी है। अब तो जो कला सीखेगा, और अपनी रोटी अपने बाहुबल से कमावेगा, वही लालों का लाल बनेगा, नहीं तो लज्जा और अपमान के अतिरिक्त और कुछ हाथ न आवेगा।"

दिलदारशाह ने उत्तर दिया—"हाँ, यह सच है। मैं इसको समझता हूँ। परंतु हमारी भी तो इतनी आयु इसी बुरे समय में बीत गई। सरकार ने जो पाँच रुपए की पेंशन नियत की है, तुम जानते हो, इसमें हमारे कितने दिन चलते होंगे। आठ आना प्रतिदिन तो बच्चों का ख़र्च है। हम दोनों स्त्री-पुरुष रुपए-डेढ़ रुपए का प्रतिदिन गोटा बुनते हैं, और आनंद से अपना निर्वाह करते हैं।" ये बातें हो ही रही थीं कि एक तीसरे साहब वहाँ आ विराजे, और कहा—"आस्ट्रिया का उत्तराधिकारी मारा गया। बादशाह को जब यह समाचार मिला, तो वह विह्वल हो गया और हाय कहकर बोल उठा कि राक्षसों ने सब कुछ लूट लिया। मेरे लिये कुछ न छोड़ा।"

मिर्ज़ा दिलदारशाह यह सुनकर हँसने लगे, और बोले—"भई, वाह ! अच्छी वीरता है। बेटे के अकस्मात् मरने से ऐसे घबरा गए। मियाँ ! जब बहादुरशाह के पुत्र मिर्ज़ा मुग़ल गोली इत्यादि से मारे गए, और उनके सिर काटकर उनके सामने लाए गए, तो बादशाह

ने थालों में कटे हुए बेटों के सिर देखकर बड़ी बेपरवाही से कहा--
"मान और मर्यादा से सम्मुख आनेवाले वीर पुरुष ऐसे ही दिन के लिये बच्चे पालते हैं।"

जो महाशय समाचार लाए थे, वह बोले--"क्यों साहब, ग़दर में आपकी क्या अवस्था होगी?" मिर्ज़ा दिलदारशाह ने कहा--"कोई चौदह-पंद्रह वर्ष की। मुझे सब घटनाएँ अच्छी तरह याद हैं। पिताजी हमको लेकर ग़ाज़ियाबाद जा रहे थे कि हिंडन-नदी पर हमको सेना ने पकड़ लिया, मेरी माँ और छोटी बहन चीख़ें मार-मारकर रोने लगीं। पिताजी ने उनको समझाया, और आँख बचाकर एक सिपाही की तलवार उठा ली। तलवार हाथ में लेनी थी कि सिपाही चारों ओर से उन पर टूट पड़े। उन्होंने दो-चार को घायल किया। परंतु संगीनों और तलवारों के इतने वार उन पर हुए कि बेचारे बोटी-बोटी होकर गिर पड़े, और शहीद हो गए। इनके वध के उपरांत सैनिकों ने मेरी बहन और माँ के कानों को नोच लिया, और जो कुछ उनके पास था, छीनकर चलते हुए। मुझको उन्होंने क़ैद करके साथ ले लिया। जिस समय मैं माँ से अलग हुआ, उनके करुण क्रंदन से आकाश कंपायमान होता प्रतीत होता था। वह कलेजे को थामे हुए चीख़ती थीं और कहती थीं--"अरे मेरे लाल को छोड़ दो। तुमने मेरे प्राणपति को धूल में सुला दिया! इस अनाथ पर तो दया करो। मैं रँड़िया किसके सहारे अपना रँड़ापा काटूँगी। भगवन्! मेरा कलेजा फटा जाता है। मेरे हृदय का टुकड़ा कहाँ जाता है? कोई अकबर और शाहजहाँ को क़ब्र से बुलावे, और उनके घराने की दुखिया की बिपता सुनावे! देखो, मेरे लाल को मिट्टी में मसले देते हैं! अरे कोई आओ, मेरी गोदियों का पाला मुझको दिलवाओ!"

छोटी बहन "भाईजी, भाईजी!" कहती हुई मेरी ओर दौड़ी।

परंतु सिपाही घोड़ों पर सवार होकर चल दिए, और मुझको बाग-डोर से बाँध लिया। घोड़े दौड़ते थे, तो मैं भी दौड़ता था। पैर लहू-लुहान हो गए थे। हृदय धड़कता था। दम उखड़ा जाता था। आज तक मुझे अपनी माँ और बहन का पता नहीं लगा। पता नहीं, उन पर क्या बीती, और वे कहाँ गईं! मुझको सैनिक अपने साथ दिल्ली लाए, और वहाँ से इंदौर ले गए। मुझसे घोड़े मलवाते और उनकी लीद उठवाते थे। कुछ दिनों बाद मुझको छोड़ दिया गया। मैंने इंदौर में एक ठाकुर के यहाँ दरबानी की नौकरी कर ली। कई वर्ष इसमें बिताए। फिर दिल्ली में आया, और सरकार से प्रार्थना की। उसकी कृपा से मेरी भी औरों की भाँति पाँच रुपए मासिक पेंशन नियत कर दी गई। इसके उपरांत मैंने विवाह किया। ये बच्चे हुए।" इस घटना के उपरांत मिर्ज़ा दिलदारशाह बीमार हुए, और दस दिन बीमार रहकर संसार से चल बसे।

इनकी मृत्यु का शोक सबसे अधिक इनकी स्त्री और लड़के को था। लड़का दस वर्ष का था, और अच्छी तरह समझता था कि उसके पिता मर गए हैं। परंतु वह बार-बार माँ से कहता था कि पिताजी को बुला दो। अस्तु, इस रोने-धोने में ये सब लोग सो गए। अगले दिन प्रातःकाल को बेगम साहबा उठीं, तो देखा, घर में झाड़ू फिरी हुई है। कपड़ा-लत्ता, बर्तन-भाँड़ा, सब चोर ले गए। बेचारी विधवा ने सिर पीटा और चिल्लाई—"हाय, अब मैं क्या करूँगी? मेरे पास तो एक तिनका भी न रहा। घर के स्वामी के उठते ही चोरी भी हुई।" आसपास के मुहल्लेवाले इनके रोने की आवाज़ को सुनकर एकत्र हो गए, और सबने शोक प्रकट किया।

पड़ोस में एक गोटेवाले रहते थे। उन्होंने कुछ खाना भेज दिया। बेचारी ने ठंडी साँस भरके उसको ले लिया। यह पहला दिन था कि विधवा राजकुमारी ने दान का भोजन खाया। उसको इस बात

का बड़ा ही दुःख हुआ। चारों ओर ईद की चहल-पहल थी। प्रत्येक घर में ईद के सामान बन रहे थे। परंतु उस घर में, जहाँ दूध-पीती बच्ची को गोद में लिए विधवा राजकुमारी अनाथ राजकुमार को समझा रही थी—क्योंकि वह नई जूती और नए कपड़े माँगता था—माँ ने कहा—"बेटा, तुम्हारे पिता परदेस गए हैं। वह आ जायँ, तो कपड़े मँगवावेंगे। देखो, तुम्हारे दूल्हाभाई भी बनारस गए हैं। वह होते, तो उनसे ही मँगा देते। अब किसको बाज़ार भेजूँ?" लड़के ने कहा—"मैं स्वयं ले आऊँगा। मुझको दाम दे दो।" दाम का नाम सुनकर दुखिया राजकुमारी के आँसू आ गए। उसने कहा—"तुम्हें ख़बर नहीं, रात को घर में चोरी हो गई। हमारे पास एक पैसा भी नहीं है। हठी राजकुमार ने मचलकर कहा—"नहीं, मैं तो अभी लूँगा।" यह कहकर दो-चार गालियाँ माँ को दीं। कष्ट-पीड़िता ने ठंडी साँस भरके आकाश की ओर देखा, और बोली—"अच्छा, ठहरो। मैं मँगाती हूँ।" यह कहकर पड़ोस के घर से लगी हुई खिड़की में जाकर खड़ी हुई, और गोटेवाले की स्त्री से कहा—"बुआ, सूतक के दिन हैं। मैं भीतर तो नहीं आ सकती, तनिक मेरी बात सुन जाओ।" वह बेचारी शीघ्र ही उसके पास आई, तो उसे सब समाचार बताया, और प्रार्थना की—"परमात्मा के नाम पर अपने बच्चे की उतरन कोई जूती या कपड़ों का जोड़ा हो, तो एक दिन के लिये माँगे दे दो। कल सायंकाल को लौटा दूँगी।" राजकुमारी 'उतरन' कहते समय हिचकी लेकर रोने लगी। पड़ोसिन को बड़ी दया आई। उसने कहा—"बुआ, रोने और जी भारी करने की कोई बात नहीं। नन्हें की कई जूतियाँ और कई जोड़े फ़ालतू रक्खे हैं। एक तुम ले लो। इसमें उतरन का विचार न करो। इसने तो एक-दो दिन यों ही पाँव में डाली थी। मैंने सँभालकर रख दी।" यह कहकर पड़ोसिन ने जूती और कपड़े

राजकुमारी को दिए। राजकुमारी ये चीज़ें लेकर बच्चे के पास आई, और उसको दिखाईं। बच्चा प्रसन्न हो गया।

दूसरे दिन ईदगाह जाने के लिये राजकुमारी ने अपने बच्चे को भी गोटेवाले पड़ोसी के साथ कर दिया। ईदगाह पहुँचकर अनाथ राजकुमार ने गोटेवाले के लड़के से कहा—"अबे, तेरी टोपी से हमारी टोपी अच्छी है।" गोटेवाले के लड़के ने उत्तर दिया—"चल बे! उतरन-कतरन पर ऐंठता है। अबे! यह मेरी टोपी है। अम्मा ने दान में दे दी है।" यह सुनना था कि राजकुमार ने एक थप्पड़ गोटेवाले के बच्चे के मारा और कहा—"हमको दान लेनेवाला कहता है!" गोटेवाले ने जो अपने बच्चे को पिटते देखा, तो उसे भी क्रोध आ गया, और उसने दो-तीन थप्पड़ राजकुमार के मारे। लड़का रोता-धोता भागा। गोटेवाले ने ख़याल किया कि इसकी माँ क्या कहेगी कि साथ ले गए थे, कहाँ छोड़ आए। इसलिये वह उसे पकड़ने को दौड़ा। परंतु, लड़का आँखों से ओझल हो गया, इसलिये गोटेवाला हार मानकर अपने घर चला आया। अब राजकुमार की यह दशा हुई कि भीड़-भाड़ के साथ ईदगाह से घर की ओर आ रहा था कि मार्ग में एक गाड़ी की झपट में आकर गिर पड़ा, और घायल हो गया। पुलीस उसको अस्पताल ले गई।

घर में उसकी माँ की विचित्र दशा थी। रह-रहकर उसे बेहोशी आती थी। दो वक़्त की भूकी थी। उस पर ईद और यह विपत्ति कि लड़का गुम हो गया। उस पर कोढ़ में खाज यह थी कि कोई भी वहाँ ऐसा न था, जो लड़के की खोज में जाता। अंत में वही बेचारा गोटेवाला फिर गया, और पुलीस में रिपोर्ट की। तब ज्ञात हुआ कि वह अस्पताल में है। अस्पताल जाकर समाचार लाया, और राजकुमारी को सब समाचार सुनाया। उस समय की दशा बड़ी विचित्र थी।

ईद का सायंकाल था। घर-घर आनंद मनाया जा रहा था। धन्य-वाद और आशीर्वाद दिए जा रहे थे। भेटें और ईदियाँ बाँटी जा रही थीं। प्रत्येक मुसलमान अपनी हैसियत से अधिक घर को सजा रहा था, और अपने बाल-बच्चों को प्रसन्नचित्त लिए बैठा था। परंतु बेचारी विधवा राजकुमारी दो वक़्त से भूखी अपने बच्चे के शोक में आँखों में आँसू भरे अँधेरे, उजाड़ घर में बैठी आकाश को देखती, और कहती थी—"परमात्मन्! मेरी ईद कहाँ है?" वह हिचकियाँ लेकर रोती थी। उधर अनाथ राजकुमार माँ के स्मरण में तड़पता था।

आठवाँ अध्याय

ग़दर के मारे पीरजी घसियारे

दीन अलीशाह क़लंदर दिल्ली के एक विख्यात पुराने आदमी थे। फ़राशख़ाने से बाहर इनका तकिया अब तक विख्यात है। ग़दर से पूर्व युवावस्था में मैं साधु-संत लोगों की सेवा में लगा रहता था। मुझे अपनी साधु-संत-सेवा के साथ अपने धन का घमंड था, अपने सौंदर्य का गर्व था। मैं अपने शारीरिक बल पर अकड़ता था। माँ-बाप का इकलौता था। पिता से अधिक माँ को प्यार करता था। पिताजी बाज़ार में रहते थे। इनके सैकड़ों मुरीद थे। राजकुमार और राजकुमारियाँ प्रतिदिन इनके पास आती थीं। भेंट का कुछ ठिकाना न था। बस, हम बिना किसी चिंता से आनंद करते थे। परंतु पिताजी की यह दशा थी कि इतनी धन-संपत्ति होने पर भी वह नगीने जड़कर अपना निर्वाह करते थे। मुरीदों के रुपयों को हाथ न लगाते थे। एक दिन मैंने माँ से पूछा—"माँ! पिताजी घर में सब कुछ होने पर भी नगीने क्यों घिसा करते हैं? बड़ी लज्जा की बात है। परमात्मा ने सब कुछ दिया है। फिर क्यों यों ही पापड़ बेलते हैं।" माँ ने हँसकर कहा—"बेटा, इनका विश्वास है कि फ़क़ीरी वही पूर्ण है, जो अपनी रोटी अपने आप कमावे, दूसरों के सहारे पर हाथ-पाँव तोड़कर न बैठे। इनका कहना है कि अमीर मुरीदों से जो मिले, वह ग़रीब मुरीदों का है, हमारा नहीं। हमको अपनी रोज़ी आप कमानी चाहिए।" मैंने कहा—"तो क्या मुरीदों की भेंट हराम है, जो वह नहीं खाते?" माँ ने कहा—नहीं, हराम तो नहीं, परंतु उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं। वह दूसरों की चीज़ है। परमात्मा इस भेंट को इसलिये भेजता है कि हम

अपने दीन भाइयों की रक्षा का भी ध्यान रक्खें, और स्वयं जब हाथ-पाँव चलते हैं, तो अपनी रोज़ी कमावें।"

दुर्दाना छोकरी

इस वार्तालाप के तीसरे दिन नवाब ज़ीनत महल साहबा, श्रीमान् सम्राट् महोदय की मुख्य बेगम पिताजी की सेवा में आईं। इनके साथ एक बाँदी दुर्दाना नाम की थी। ज्यों ही इस पर मेरी दृष्टि पड़ी, हृदय में एक तीर-सा लगा। इसने भी मुझको प्रेम की दृष्टि से देखा। परंतु दोनों लाचार थे। बात न कर सकते थे। बेगम साहबा ने कई बार "दुर्दाना" कहकर पुकारा, तो नाम का ज्ञान हुआ; नहीं तो मुझे यह अवसर भी न मिलता कि उसका नाम ज्ञात कर सकूँ। बेगम साहबा चली गईं, और मेरी बुरी दशा होने लगी। दो रात तनिक भी नींद न आई। रोटी तक छूट गई। बहुत कुछ सोचता कि दुर्दाना से मिलने का कोई ढंग निकालूँ, पर कोई उपाय समझ में न आता था। अंत में जब मेरी विरह-तड़पन बहुत बढ़ गई, तो नियमानुसार दीन अलीशाह क़लंदर की सेवा में उपस्थित हुआ, और सारी विपत्ति उन्हें कह सुनाई। वह मुसकिरा दिए, और चुपके हो गए। दुबारा प्रश्न करने का साहस न था। बिना मनोकामना पूरी किए घर को लौटा। मार्ग में हुसेनी पतंग-वाला मिला, जो मेरा गहरा मित्र था। उसने जो मेरी उतरी हुई आकृति देखी, तो घबराकर पूछने लगा—"कहो मित्र, कुशल तो है? तुम्हारे चेहरे पर हवाइयाँ क्यों उड़ रही हैं? आँखों में घेरे क्यों पड़ गए हैं?" मैंने कहा—"भई, दुर्दाना नाम की छोकरी का प्रेम सिर पर सवार है। यह विचित्र ही रोग है। मैं तो इस कूचे से अनभिज्ञ था। देखिए, क्या होता है। भाग्य इस उठती हुई तरुणा-वस्था के हाथों क्या-क्या रंग दिखाता है। दुर्दाना को मिलाता है, या मुझे यह राक्षस क़ब्रस्तान भिजवाता है।" हुसेनी बोला—"भई,

यह भी कोई चिंता की बात है ? नसीबन कहारी के द्वारा दुर्दाना से मिल लो। यह कहारी महल में आनी-जाती है। जो कहोगे, दुर्दाना तक पहुँचा देगी।" हुसेनी ने ऐसा उपाय बताया कि मेरे हृदय का काँटा निकल गया। सीधा घोसियों के मुहल्ले में गया, जहाँ वह कहारी रहती थी। कुछ देकर उसको संदेशा ले जाने पर राज़ी किया। दूसरे दिन वह कहारी मेरे पास आ गई, और दुर्दाना का यह समाचार लाई कि उसका मिलना कठिन है।

जब तक मैं कोई बहाना न करूँ। वह यह होना चाहिए कि शहर के बाहर कहीं जप या पाठ करने बैठूँ। वह बेगम साहबा को लेकर वहाँ आवेगी, और इस प्रकार सदा के लिये आने-जाने का ढंग निकाल लिया जायगा। दुर्दाना की यह बात मेरी समझ में बैठ गई। सीधा माँ के पास गया, और कहा—"लो माँ ! तुम सदा यह कहा करती थीं कि पैतृक कार्य का मुझे विचार नहीं। न रोज़ा रखता हूँ, और न नमाज़ पढ़ता हूँ। ये ही दिन कुछ सीखने के हैं। कुछ सीखना है, तो सीख लूँ। परमात्मा न करे, कल पिताजी की आँखें बंद हो गईं, तो यह धन-संपत्ति दूसरे के पास चली जायगी, और मैं हाथ मलता रह जाऊँगा। बस, मैं आज आपकी आज्ञा के पालन के लिये उद्यत हूँ। पिताजी से कहो कि मुझे कुछ बतावें। मैं दीन अलीशाह के तकिए के पास चालीस दिनवाला पाठ करूँगा।" माँ ने कहा—"न बेटा ! मुझे तेरा जंगल में रखना स्वीकार नहीं। कुछ करना है, तो घर में ही करो। मैं एक क्षण के लिये भी तुम्हें अपनी आँखों से ओझल न होने दूँगी।" मैंने बहुत कुछ समझाया; परंतु माँ के ध्यान में कुछ न आया। अंत में पिताजी को इस बात का पता चला। वह मेरे विचार से बड़े प्रसन्न हुए। माँ को राज़ी करके और कुछ गोप्य मंत्र पढ़ाकर तकिए में भेज दिया। दोनों समय घर से नौकर जाता। खाना दे आता,

और मेरा कुशल-समाचार ले आता। मैं बिना किसी चिंता के अपने कार्य में तल्लीन रहता।

दो जासूस

चौथे-पाँचवें दिन की बात है। मैं रात के समय बैठा जप कर रहा था कि इतने में दो अपरिचित पुरुष मेरे पास आए। वे फटे-मैले कपड़े पहने हुए थे। मैंने संकेत से कहा—"कौन हो?" बोले—"यात्री हैं।" मुझे कुछ संदेह हुआ कि कहीं चोर न हों। जप छोड़कर पूछा—"यहाँ आने का तुम्हारा क्या उद्देश है?" बोले—"आपसे तावीज़ लेने आए हैं। दुर्दाना ने आपका पता बताया था।" दुर्दाना का नाम सुनकर जान में जान आ गई। रात्रि का समय था। दीपक टिमटिमा रहा था। मैं इन यात्रियों को पहचान न सका। भीतर-ही-भीतर सोच रहा था कि ये यात्री कौन हैं, जो दुर्दाना को भी जानते हैं? अंत में मैंने कहा—"आप दुर्दाना को कैसे जानते हैं?" यात्री बोले—"बेगम साहबा से मार्ग-व्यय माँगने गए थे। वहाँ उनसे भेंट हुई थी। बड़ी मिलनसार और विदुषी हैं।" मैंने कहा—"तुम किस बात के लिये तावीज़ चाहते हो?" उन्होंने कहा—"विजय के लिये।" पूछा—"किसके लिये?" वे हँसकर बोले—"राजकुमार जवाँबख़्त के लिये।"

अब मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। राजकुमार जवाँबख़्त ज़ीनत महल के लाड़ले बेटे थे। अँगरेज़ों ने मिर्ज़ा दाराबख़्त के मरने के उपरांत मिर्ज़ा फ़ख़्र को उत्तराधिकारी किया था, और ज़ीनत महल इस प्रयत्न में थीं कि जवाँबख़्त उत्तराधिकारी हों। मैंने कहा—"जवाँबख़्त को किसके विजय की आवश्यकता है?" यह सुनकर यात्रियों ने तमंचे निकाल लिए, और उनकी नाल मेरी ओर करके बोले—"बस, चुप! भेद किसी से न कहना। हम जवाँबख़्त के जासूस हैं। तुमसे यह काम है कि तुम्हारे पिता के पास जो छिपे हुए

काग़ज़ शाहआलम के हैं, और जिनमें शाही रहस्यों और उचित और विश्वस्त बातों का प्रमाण है, वे हमें ला दो। यदि तुमने इसकी पूर्ति के लिये वचन नहीं दिया, तो अभी काम तमाम कर देंगे।" तमंचे देखकर कुछ घबराहट हुई। पर मैंने स्थिरचित्त से कहा—"मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं, यदि दुर्दाना मुझसे मिलने का वचन दें। मुझे प्रतीत होता है, वह तुम्हारे साथ हैं, और उन्हीं से तुम्हें काग़ज़ों का पता चला है।" उन्होंने कहा—"हाँ, यह ठीक है कि दुर्दाना तुमसे मिलेंगी। हमें ज्ञात हुआ है कि बादशाह शाह-आलम ने अपना विश्वासपात्र समझकर प्रमाण-पत्रों को तुम्हारे पिता के पास अमानत में रख दिया था, और कहा था कि आवश्यकता के समय मेरे उत्तराधिकारियों को दे देना। मैंने पूछा—"तो क्या दुर्दाना रात को महल में रहती हैं?" बोले—"नहीं, आधीरात के लगभग वह कश्मीरीदरवाज़ेवाले घर में आ जाती हैं, और वहीं हम रहते हैं।" मैंने इनसे घर का पता पूछा, और इसके उपरांत कहा—"मुझे काग़ज़ ला देने में कोई आपत्ति नहीं। पर पिताजी ने न-मालूम कहाँ रक्खे हैं। मैंने तो आज तक इनके विषय में कुछ भी नहीं सुना।" जासूसों ने कहा—"देखो, झूठ न बोलो। जिस दिन तुमने दुर्दाना को देखा है, उसी दिन काग़ज़ों की बात छिड़ रही थी।" अब तो मैं व्याकुल हो गया। अंत में जी कड़ा करके बोला—"यह तो मुझसे न होगा। यह सुनते ही उन्होंने फिर तमंचे निकाल लिए, और मेरी ओर उनको किया। शरीर में बल था। चित्त स्थिर था। लपककर मैंने तमंचे पकड़ लिए और झटका देकर उनको छीन लिया। इसके उपरांत एक मुक्का उसके और एक मुक्का दूसरे के इस ज़ोर से मारा कि वे चक्कर खाकर गिर पड़े, और मैंने दौड़कर उनके हाथ-पाँव बाँध दिए। दोनों को बाँधकर और कमरे का ताला लगा-

कर मैं सीधा कश्मीरीदरवाज़े पहुँचा। कोई ग्यारह बज रहे होंगे। जासूसों के बताए हुए मकान पर जाकर आवाज़ दी। दुर्दाना ने पूछा—"कौन है?" मैंने कहा—"तनिक द्वार की ओर भी तो आओ।" जब दुर्दाना समीप आई, तब मैंने कहा—"उन दो महाशयों ने भेजा है। वे, तकिए के पास जो शाह आकर रहे हैं, वहाँ बैठे हैं, और शाह साहब से उस बात के लिये वचन ले लिया है। इसलिये उन्होंने तुमको बुलाया है कि दुर्दानाजी आ जायँ, तो सब काग़ज़ अभी मिल जायँ।" दुर्दाना ने कहा—"डोली मँगा लो, अभी चलती हूँ।" मैं मुहल्ले में जाकर डोली ले आया, और कहारों को चुपचाप समझा दिया कि अमुक स्थान ले चलना। बस, दुर्दाना को सवार कराके मैं अपने घर आया, और एक अलग दालान में सवारी को उतरवाया। माँ उस समय सो गई थीं। पिताजी ऊपर तिछत्ते पर थे। माँ को जगाकर सब हाल कहा। वह डरीं, पर मेरे प्रार्थना करने पर वह चुप हो गईं। मैं दुर्दाना को दूसरे दालान में ले गया। दीपक जलते ही दुर्दाना भौचक्की रह गई, और बोली—"हैं! तुम यहाँ कहाँ लाए?" मैंने कहा—"देखो, अब यह तुम्हारा घर है। यदि तुमने चीं-चपड़ की, तो फिर जीवन की ख़ैर नहीं। उन जासूसों को मैंने क़ैद कर लिया है, और तुम भी मेरी क़ैद में हो, यद्यपि मेरा मन तुम्हारा क़ैदी है। मैं सब बातें जान गया हूँ। जो तुम अपनी इच्छा से चुप हो गईं, तो यह तुम्हारा घर है। अर्द्धांगिनी बनाकर रक्खूँगा, नहीं तो तुमको और उन जासूसों को मार डालूँगा।" दुर्दाना ने कहा—"मुझे आपके यहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं है। मेरा हृदय तो स्वयं ही इसके लिये इच्छुक था। परंतु इन जासूसों को छोड़ दो, नहीं तो ख़ैर नहीं। यदि इनका बाल भी बाँका हो गया, तो बड़ा भारी तहलक़ा मच जायगा।" मैंने कहा—"यदि इन जासूसों को छोड़ दिया, तो मेरी स्थिति बड़ी

बुरी हो जायगी।" दुर्दाना ने कहा—"कोई डरने की बात नहीं है। तुम अभी वहाँ जाओ, और उनसे कहो कि असली काग़ज़ तो ला नहीं सकता, इनकी नक़ल ला देता हूँ; परंतु इस शर्त पर कि दुर्दाना के मामले पर पर्दा डाल दिया जाय।" मैंने कहा—"मुझसे तो यह विश्वासघात न हो सकेगा कि अपने ऊपर विश्वास करनेवाले बादशाह का भेद दूसरों को दे दूँ।" दुर्दाना ने कहा—"यह कोई कठिन कार्य नहीं। बनावटी बातें काग़ज़ों पर लिख दो। उन्होंने असली काग़ज़ात थोड़े ही देखे हैं, जो संदेह करेंगे। क़िले के भीतर वे गड़े हुए हैं। उनको खोद भी नहीं सकते। केवल उनका परिचय चाहते हैं, जो भविष्य के लिये काम आवे।" मैंने इस युक्ति को स्वीकार किया। उस समय रात का एक बज रहा था। फिर तकिए पर गया। वहाँ से जासूसों को निकाला, और सारा हाल कहा। वे बोले—"यदि तुम इन काग़ज़ों की नक़ल दे दोगे, तो हम दुर्दाना के मामले में तुम्हारा साथ देंगे।" मुक्त होकर वे अपने घर गए, और उनसे मैंने कहा कि कल दोपहर को काग़ज़ों की नक़ल घर पर पहुँच जायगी। दूसरे दिन प्रातःकाल से मैंने नक़ल प्रारंभ की। दुर्दाना यों ही बनावटी स्थानों का नाम बताती जाती थी, और मैं लिखता जाता था। इतने में पिताजी ऊपर से नीचे आए। उनके क्रुद्ध होने के भय से माँ के पास चला गया। दुर्दाना ने झुककर प्रणाम किया। पिताजी माँ के पास गए, तो मैं वहाँ से भी उठकर चला गया। माँ ने सब बात कही। सब बातें सुनकर वह सन्नाटे में आ गए। बोले—"अब ख़ैर नहीं। उफ़्! ग़ज़ब हो गया। और, यह तो पूजा-पाठ करने गया था, इस मैना को कहाँ से ले आया? अच्छा तो मैं इन दोनों का काम तमाम किए देता हूँ।" यह सुनकर माँ हाथ जोड़ने लगीं। उनका क्रोध शांत हुआ। पिताजी फिर मेरे पास आए, और दुर्दाना के बनावटी काग़ज़ों को देखा, तो मुसकिराए, और बोले—"भई, ख़ूब धोका

दिया ! अच्छा तुम्हारी इच्छा ।" पिताजी बाहर गए, और मैं सीधा जासूसों के यहाँ पहुँचा । वह काग़ज़ उनको दिया, जिसको देखकर वे अति प्रसन्न हुए । कहा—"यदि जवाँबख़्त को गद्दी मिल गई, तो मैं निहाल कर दिया जाऊँगा । इसके उपरांत मैं घर आया, और दुर्दाना से विवाह करके आनंद से रहने लगा ।

ग़दर

कुछ दिनों के उपरांत प्रलयकारी विद्रोह हुआ । पिताजी ग़दर से पूर्व अपने एक मुरीद के यहाँ अंबाले चले गए थे । मैं और दुर्दाना भी साथ थे । जब ग़दर की गर्मी ठंडी पड़ गई, तो अंबाले ही में पिताजी का स्वर्गवास हो गया, और मैं दिल्ली लौट आया । पर वहाँ आकर देखा, तो मुरकबाज़ार खुदकर पृथ्वी के समतल हो चुका था । बस, एक मकान किराए का लिया, और उसी में रहने लगा । पिताजी के जितने मुरीद थे, वे या तो निर्वासित कर दिए गए थे, या फाँसी पा गए थे, या दीन-हीन हो गए थे । मुझको उनसे सहायता की कोई आशा न थी, और स्वयं कुछ काम न आता था, जो अपने निर्वाह का ढंग निकालता । कुछ दिनों तक तो रक्खे हुए धन से काम चलाया । इसके उपरांत तंगी होने लगी, और दो-एक दिन भूका भी रहना पड़ा । अब हमारे दो बच्चे भी थे । दुर्दाना बड़ी फ़िज़ूल-ख़र्च निकली । तंग आकर दुर्दाना के परामर्श से मैंने फिर तकिए की ठानी, और वहाँ जाकर अपना आसन जमाया । कुछ दिनों के उपरांत हिंदू-स्त्रियाँ तावीज़-गंडे के लिये आने लगीं, और प्रातःकाल से सायंकाल तक रुपए-सवा रुपए की आय होने लगी । पाँच पैसे को तावीज़ देता, और पाँच आने को गंडा । यह नियम हो गया था । एक दिन दोपहर को सो रहा था कि स्वप्न में दीन अलीशाह क़लंदर और अपने पिता को देखा कि दोनों आपस में बातें कर रहे हैं । कह रहे हैं—"देखो, मैंने अपना संपूर्ण जीवन नगीना बनाने में काटा, और मेरा बेटा

दूसरों की कमाई पर नीच वृत्ति कर रहा है।" आँख खुली, तो सहसा रोना आ गया। सीधा दुर्दाना के पास आया, और सब हाल उससे कहा। दुर्दाना ने कहा—"स्वप्न यों ही हुआ करते हैं। अब यह न करोगे, तो क्या करोगे? काम कुछ आता नहीं।" मैंने कहा—"नौकरी करूँगा।" यह ठानकर नौकरी की खोज की, और एक पाठशाला में दस रुपए मासिक की नौकरी कर ली। इसी समय दुर्दाना बीमार पड़ी। बहुत कुछ दवा की; पर वह बच न सकी। उसके मरने से बच्चों की देख-भाल का भार मेरे ऊपर आ पड़ा। नौकरी पर जाता, तो बच्चों को साथ ले जाता, और भोजन के लिये बाज़ार के घाट उतरता। बस, इसी प्रकार बड़ी कठिनाई से एक वर्ष काटा।

रसोई करनेवाली

पाठशाला में मेरी वेतन-वृद्धि हो गई। वहाँ बीस रुपए मिलते थे। शाम को दो लड़के घर पर पढ़ने आते थे, दस रुपए उनसे मिलते थे; तीस रुपए मेरे लिये बहुत थे। इसलिये एक दिन विचार किया कि किसी रोटी बनानेवाली को नौकर रख लेना चाहिए। विना उसके काम न चलेगा। मैं इसी खोज में था कि एक दिन एक दीन स्त्री बुर्क़ा पहने भीख माँगने आई। मैंने कहा—"भलीमानस! नौकरी कर ले। भीख माँगना बड़ा बुरा काम है।" उस स्त्री ने रोते हुए कहा—"मियाँ, तुम्हीं नौकर रख लो। सब ज़मानत चाहते हैं। मैं कहाँ से ज़मानत लाऊँ?" मैंने कहा—"तुम कौन हो? तुम्हारा कोई है भी?" इस पर वह फूट-फूटकर रोने लगी और कहा—"परमात्मा के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। अधिक न पूछो। मुझमें वर्णन करने की शक्ति नहीं।" मैंने कहा—"अच्छा, तू हमारे यहाँ रोटी बनाया कर।" उसने ऐसा करना स्वीकार किया और रोटी बनाने लगी। परंतु सदा वह पर्दे का

ख़याल रखती और कभी मेरे सामने न आती थी। पर एक दिन संयोग से मेरी दृष्टि उस पर पड़ गई। देखा, तो युवती और रूपवती थी। मैंने कहा—"बड़ी कठिनाई है। तुम्हारे पर्दे से तो जी घबराता है। तुम मुझसे विवाह ही क्यों न कर लो, जिससे यह पर्दा उठ जाय।" कुछ सोचने के बाद वह ऐसा करने को राज़ी हो गई, और उसके साथ मेरा विवाह हो गया।

विवाह के उपरांत जो मैंने उसे देखा, तो उसकी आकृति पहचानी-सी प्रतीत होने लगी। पर मेरी समझ में न आता था कि

मैंने पहले उसे कहाँ देखा है। एक दिन उसने स्वयं ही कहा—"आप-को कदाचित् स्मरण न होगा, बचपन में माताजी के साथ मैं आपके यहाँ बहुत आती-जाती थी। मैं बहादुरशाह बादशाह की प्रेवती हूँ। गौहर बेगम मेरा नाम है।" गौहर बेगम का नाम सुनकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। परमात्मा की कृपा से यह वही राजकुमारी थी, जिसके बड़े चाव-चोचले थे। अपनी माँ की इकलौती बेटी थी, और हमारे यहाँ बड़े ठाट-बाट से आया करती थी।" मैंने पूछा—"भला, बताओ तो सही, तुम पर ग़दर में क्या-क्या बीती और तुम अब तक कहाँ-कहाँ रहीं ?"

राजकुमारी की आप-बीती

ग़दर में मैं तेरह साल की थी। ग़दर में ही मेरी माँ का देहांत हो गया और मैं बड़ी दाई के पास रहती थी। जब बादशाह दिल्ली से भागे, तो दाई मुझको लेकर अँगरेज़ी जनरल के पास चली गई, और सब समाचार कहा। उसने बड़े प्यार से अपने डेरे में रक्खा, और दूसरे दिन एक पंजाबी मुसलमान अफ़सर के अधीन कर दिया। वह अफ़सर मुझे लेकर लखनऊ गया। वहाँ उन दिनों लड़ाई हो रही थी, जिसमें अफ़सर बेचारा मारा गया, और मैं भागकर उन्नाव चली गई। उन्नाव में एक हिंदू ने अपने घर रक्खा। पर उसकी कुचेष्टा देखकर मैं वहाँ से भागी। मार्ग में एक देहाती ज़मींदार मिला, और वह मुझे अपने घर ले गया। कुछ दिनों के उपरांत उसने अपने लड़के के साथ विवाह कर दिया। पर मुझे उन गँवारों में रहना दूभर था। बस, नरक की-सी यातनाएँ भोग रही थी। परमात्मा की कृपा से गाँव में किसानों में खेतों के ऊपर झगड़ा हो गया, और लाठी चली, जिसमें मेरे श्वशुर और पति मारे गए। इसलिये मैं घर से निकलकर कानपुर आई। वहाँ एक व्यापारी के यहाँ रोटी करने लगी। वह व्यापारी बड़ा ही भ्रष्टचरित्र था। मुझसे तो

उसने कुछ न कहा; पर रात-दिन उसके यहाँ कुलटा स्त्रियों का आवा-गमन लगा रहता, जिससे मेरा जी उकता गया, और मैंने दिल्ली जाने की ठानी। स्टेशन पर आकर बाबुओं की ख़ुशामद करके मालगाड़ी से दिल्ली में आ गई। दिल्ली में आई, तो बड़े आश्चर्य में थी कि कहाँ जाऊँ। कोई जान-पहचान का न था। सोचते-सोचते उस कूचे में आई, जहाँ मेरा अन्नू कहार रहता था। अन्नू कहार तो मर गया था, उसकी स्त्री ने समाचार जानकर अपने पास रख लिया। उसके बेटे मछलियाँ पकड़ते थे। डोली का काम छोड़ दिया था। मैं उनके घर में रोटी बनाती थी।

एक दिन रात को कहार के लड़के ने कहा—"ये अमीर लोग भी बड़े आराम से हैं। धूप में मछलियाँ तो हम पकड़ें, और ये आनंद से बैठकर खायँ।" मैंने यों ही कहा—"दाम भी तो देते हैं, और दाम कमाने में उनको तुमसे अधिक परिश्रम और चिंता करनी पड़ती है।" कहार यह सुनकर बिगड़कर बोला—"चल री तू हमारी बात में हस्तक्षेप करनेवाली कौन?" यह कहकर एक बाँस मेरे सिर पर मारा, जिससे वह फट गया और मैं बेहोश हो गई। होश आया, तो मैंने अपने को नदी की रेती में पड़ा पाया। चारों ओर कोई न था। हिलने-डुलने की शक्ति नहीं थी। हिंदू स्त्रियाँ स्नान के लिये आती दिखाई दीं। जब वे निकट आईं, तो मैंने उनसे हाथ जोड़कर कहा—"मुझे अस्पताल पहुँचा दो। मेरे चोट लग गई है।" उन्होंने द्रवित होकर डोली मँगा दी, और मैं अस्पताल आई। वहाँ दवा हुई। अच्छी होकर सदरबाज़ार में पहुँची। वहाँ एक पंजाबी के यहाँ रोटी बनाने लगी। बस, इसी प्रकार वे दिन कटे। वह पंजाबी भी बड़ा भ्रष्टचरित्र था। उसकी कुदृष्टि देखकर मैं निकल आई, और भीख माँगने लगी; क्योंकि दो-चार स्थानों में नौकरी ढूँढ़ी, तो लोगों ने ज़मानत माँगी। एक दिन भीख माँग रही थी कि एक लड़का रोटी देने आया। उसे

देखकर मेरे हृदय में एक प्रेम की लहर उठी। मैंने उससे पूछा—"तुम कौन हो?" उसने कहा—"मेरी माँ रोटी बनाती हैं।" मैंने कहा—"उनका नाम क्या है?" बोला—"रुक़िया।" रुक़िया का नाम सुनकर मुझे संदेह हुआ कि कदाचित् यह मेरी बुआ हैं। भीतर घर में चली गई। भीतर जाकर देखा, तो वास्तव में वह मेरी बुआ थीं। बुआ ने मुझे पहचाना। गले लगकर ख़ूब रोईं, और अपने पास ठहरा लिया। कुछ दिन मैंने उनके साथ काम किया। परंतु एक दिन उस घर में कोई चीज़ चोरी चली गई। घर के स्वामी ने पुलीस को बुलाकर कहा—"यह अपरिचित स्त्री हमारे यहाँ आई है। इसी का काम प्रतीत होता है।" पुलीसवाले मुझे कोतवाली ले गए। वहाँ मुझे यातनाएँ दी गईं। एक ने मेरी चोटी पकड़कर घसीटा। उस समय मैं आकाश की ओर देखकर मन-ही-मन सोच रही थी—मैं भारत-सम्राट् की धेवती हूँ, चोर नहीं हूँ। मुझे यह क्यों सताते हैं? परमात्मन्! मेरा संसार में कोई नहीं? मैं किससे कहूँ कि मैं निर्दोष हूँ? यह सोच ही रही थी कि एक सिपाही ने जूतियाँ मारनी शुरू कर दीं। इस घोर अपमान के कारण मुझे मूर्च्छा आ गई। अंत में थानेदार ने दया करके मुझे छोड़ दिया, और मैं भीख माँगती-माँगती आपके यहाँ आ गई।

पीरजी घसियारे

मैंने रसोई करनेवाली राजकुमारी की कहानी सुनकर ठंडी साँस भरी और कहा—"संसार में भी क्या-क्या परिवर्तन होते हैं। परंतु, मनुष्य उनसे घबराते नहीं। न अच्छे समय का कुछ भरोसा है, न बुरे का। एक-सा समय किसी का नहीं रहता। मनुष्य को न प्रसन्नता में इतराना चाहिए, और न कष्ट में घबराना। कुछ दिनों तक हम बहुत प्रसन्नता से रहे। इतने में मेरी पाठशाला की नौकरी जाती रही। साधारण-सी भूल पर मुझे अलग कर दिया गया।

लड़कों ने भी, जो मेरे पास पढ़ने आते थे, आना छोड़ दिया। अब फिर खाने की तंगी हुई। स्थान-स्थान पर नौकरी की खोज में गया। पर कहीं भी नहीं मिली। इसी दशा में मैं दरगाह निज़ामुद्दीन दर्शनों के लिये गया। लौटती बार देखा, एक घसियारा घोड़े पर घास लादे चला जाता है। मैंने रास्ता काटने के लिये उससे बातें शुरू कीं। यह पूछे जाने पर कि वह घास कितने को बिकेगी, घसियारे ने उत्तर दिया कि तीन-साढ़े तीन रुपए को बिकेगी। यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—"ओहो ! इसमें तो बड़ा लाभ है।" घसियारे ने कहा—"परिश्रम भी तो है। प्रातःकाल चार बजे गया था। अब सायंकाल चार बजे तक इतनी खोद पाया हूँ।" मैंने कहा—"जंगल से यों ही लाते हो, या कुछ देना पड़ता है ?" उसने कहा—"चालीस रुपए का एक जंगल ठेके पर ले लिया है। वहीं से लाता हूँ। एक जंगल छः महीने को यथेष्ट है। एक दिन एक ओर से खोदता हूँ, और दूसरे दिन दूसरी ओर से, तीसरे दिन किसी और ओर से। इसी प्रकार यह फेर बँधा रहता है। जब पहले दिन के स्थान की घास को खुदे आठ दिन हो जाते हैं, तो उसी स्थान में फिर घास तैयार हो जाती है, और मेरी रोज़ी फिर वहीं से प्रारंभ होती है। आठ आना प्रतिदिन घोड़े का व्यय है। तीन रुपए का मकान है। शेष घर के काम आता है। मैं अकेला हूँ। एक स्त्री है। अगर बच्चे भी होते, तो इतना परिश्रम न पड़ता। कुछ वे खोदते और कुछ मैं, और दोपहर से पूर्व ही घोड़े का बोझ हो जाता।" यह सुनकर मैं घर आया, और सारा समाचार स्त्री से कहा। स्त्री ने कहा—"घास खोदने में कुछ बुराई नहीं। बड़े-बड़े गण्यमान्य पुरुषों ने यह काम किया है। यह विचारकर मैंने स्त्री का गहना बेचकर एक टट्टू लिया। जंगल जाकर एक ज़मीन ठेके पर ली। तीन खुरपे मोल लिए, और बच्चों को लेकर घास खोदने गया।

कुछ दिन तो कठिनाई रही; परंतु फिर अभ्यस्त हो गया। हम तीनों बाप-बेटे दोपहर से पूर्व घोड़ा भर लाते हैं, और घास की मंडी में दूकानदारों के हाथ, जिससे ठेका हो गया है, खड़े-खड़े तीन रुपए को घास बेचकर घर आ जाते हैं। फिर मैं मसजिद में जाता हूँ, और सायंकाल तक परमात्मा का नाम लेकर मगन रहता हूँ। सैकड़ों स्त्री-पुरुष तावीज़-गंडे को आते हैं, और मैं इनको तावीज़ बिना कुछ लिए ही बाँटता हूँ।

लोग मेरे व्यवसाय से परिचित हैं, और घृणा करने की अपेक्षा वे समझते हैं कि मैं कोई बड़ा पहुँचा हुआ फ़क़ीर हूँ। तावीज़ मुफ़्त बाँटता हूँ, और अपनी रोज़ी के लिये घास खोदता हूँ। इसलिये मेरे प्रति लोगों की बड़ी श्रद्धा है। अपने पेशे से पचत्तर रुपए मासिक कमाता हूँ, और कॉलेज के एम्० ए०-पास लोगों से मेरा अच्छा निर्वाह हो जाता है, जिनको पचीस रुपए की ग़ुलामी भी नसीब नहीं।

नवाँ अध्याय

ठेलेवाला राजकुमार

(१)
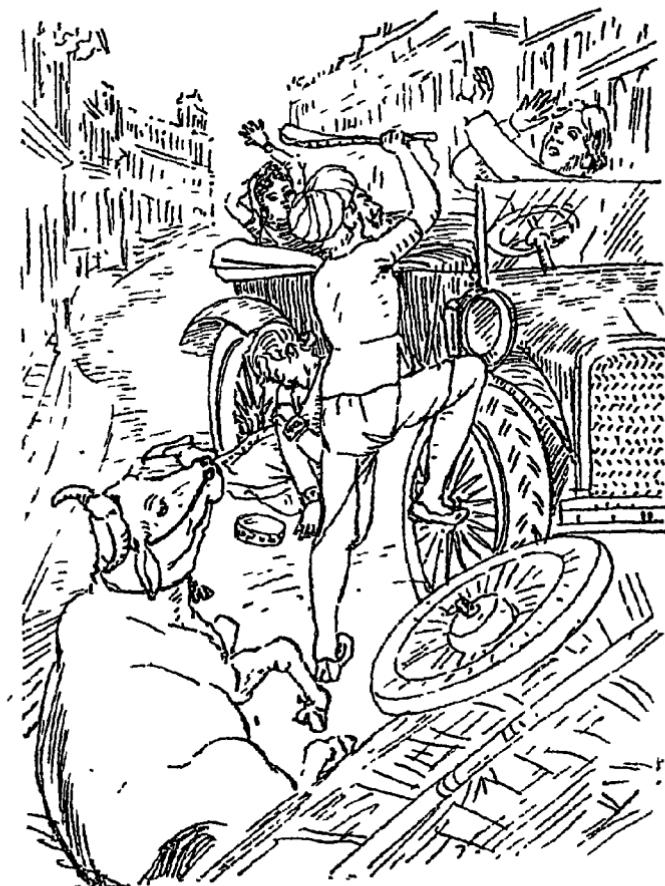
सन् १९११ ई० के दरबार में दिल्ली के दिन फिरे। नए शहर की तैयारी होने लगी। चित्र बने। विख्यात इंजीनियरों की विचक्षण बुद्धि अपने जौहर दिखाने लगी। गुम्मा ईंट बनाने और पकाने के कारख़ाने खोले गए। हज़ारों दीन-दुखियों की जीविका चमकी। पकी हुई ईंटों के ढेर-के-ढेर गाड़ियों और ठेले में रखकर नवीन राजधानी के बनाने के लिये आने लगे।

१५ मई, सन् १९१७ ई० की बात है। ठीक दोपहर की धूप और प्राणों को सुखानेवाली गर्मी में एक बूढ़ा ठेलावाला खानबहादुर सेठ मुहम्मद हारूँ के भट्टे से ईंटें लेकर दिल्ली जा रहा था। सिर पर सूर्य की तीक्ष्ण किरणें, सफ़ेद दाढ़ी और मूछों पर मार्ग की धूल-मिट्टी और माथे पर पसीना, जिसमें ईंटों की लाली जमी हुई थी। पीछे से एक मोटर (कदाचित् क़ुतुब से) आ रही थी। ड्राइवर ने भोंपू को बहुत कुछ बजाया; परंतु बूढ़े और बहरे ठेलेवाले ने उसका शब्द न सुना, और इसलिये ठेले को सड़क से न हटाया। मोटर निकट आई और ठेले से टकराई। ड्राइवर बड़ा प्रवीण था। शीघ्र ही मोटर को रोक लिया, और ठेले की टक्कर से मोटर को कुछ हानि न हुई। इस मोटर में एक तरुण पंजाबी व्यापारी मदिरा के नशे में चूर किसी बाज़ारू स्त्री को लिए बैठा था। ठेलेवाले को दीन, वृद्ध और दुर्बल देखकर वह क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया। हाथ में एक फ़ैशनेबुल कोड़ा था। उसी को लिए मोटर से उतरा, और बेचारे

ठेलेवाले को मारने लगा। ठेलेवाला अकेला था। वृद्ध और दुर्बल था, दीन और बहरा था। पर पता नहीं, हृदय में क्या साहस और वीरता रखता था कि चार कोड़े तो पहले आक्रमण में उसने खा लिए, परंतु फिर बैल हाँकने का चाबुक लेकर उसने भी शराब में मतवाले युवा पर आक्रमण किया, और चाबुक का बाँस का डंडा ऐसा मारा कि विलासी शराबी की खोपड़ी फट गई। मोटर-ड्राइवर ने चाहा कि वह उस बूढ़े को पीटने को आगे बढ़े; पर

उसके आगे पैर रखने से पहले ही चाबुक की लकड़ी उसके सिर पर

पड़ी, जिससे उसका चेहरा भी रुधिर से लाल हो गया। मोटर-नशीन वेश्या ने घबराकर रोना शुरू किया, और चीखते हुए अपने प्रेमी को मोटर में बुलाया। यह सुनकर वह युवा और ड्राइवर, दोनों मोटर में बैठ गए, और ठेलेवाले को गालियाँ देने लगे। बूढ़ा चुप-चाप खड़ा मुसकिराता और कहता था—"बस, एक वार में ही भाग निकले। मुग़ली वार सहना कोई सरल काम नहीं है।" ठेले-वाला इतना बहरा था कि मोटरवालों की गालियाँ उसने नहीं सुनीं, और फिर ठेले पर आ बैठा। मोटर भी दिल्ली चली गई, और ठेला भी रायसीने (वह स्थान, जहाँ नई दिल्ली बसाई जा रही है) में ईंट डालने चल दिया।

(२)

रायसीने के थाने में दूसरे दिन दो घायल और कुछ ठेलेवाले एकत्र थे। वह बूढ़ा ठेलेवाला भी खड़ा था। पुलीस के दारोग़ा ने पूछा—"क्या तुमने इनको घायल किया?" बूढ़ा चुप खड़ा रहा। दारोग़ा ने फिर थोड़ा बिगड़कर प्रश्न किया और कहा—"बोलता क्यों नहीं?" दूसरे ठेलेवाले ने कहा—"हुज़ूर, यह बहरा है।" तब एक सिपाही ने बूढ़े के कान पर जाकर चिल्लाकर यही प्रश्न किया, तो बूढ़े ने उत्तर दिया—"हाँ, मैंने मारा है। उन्होंने पहले मुझ पर आक्रमण किया। चार कोड़े मारे, तो मैंने भी तुर्की का जवाब ताज़ी दिया। ये अमीर लोग दीनों को घास-फूस समझते हैं। आज से साठ वर्ष पूर्व इन घायलों के माँ-बाप मेरे ग़ुलाम थे, और यही नहीं, संपूर्ण भारतवर्ष मेरा आज्ञाकारी था।"

दारोग़ा-पुलीस हँसा, और उसने कहा—"कदाचित् यह पागल हो गया है। बुढ़ापे ने इसकी समझ खो दी है। फिर उसने उसे हवा-लात में ले जाने की आज्ञा दी और कहा—"कल अदालत में चालान जायगा। ऐसे पागल को पागलख़ाने में रखना चाहिए।"

(३)

सिटी-मैजिस्ट्रेट के यहाँ बूढ़ा ठेलेवाला पुलीस की हिरासत में था, और दोनों वादी भी उपस्थित थे। कोर्ट-इंस्पेक्टर ने घटना बयान की, तो अदालत ने प्रतिवादी का बयान लेना चाहा, और यह जानकर कि वह बहरा है, चपरासी ने चीख़-चीख़कर उसका बयान लिया। बूढ़े ने कहा—"मेरा नाम ज़फ़र सुलतान है। बादशाह बहादुरशाह के भाई मिर्ज़ा बाबर का मैं पुत्र हूँ। मेरे दादा भारतवर्ष के सम्राट् मुईनुद्दीन अकबरशाह थे। ग़दर के उपरांत मैं हज़ारों कठिनाइयों के उपरांत देश-देश घूमता-फिरता दिल्ली में आया, और ठेला चलाने का काम करने लगा। ११ मई, सन् १९१७, जो ११ मई, सन् १८५७ की भाँति गरम और तीक्ष्ण थी, इस घटना की तारीख़ है। मैं बहरा हूँ। मैंने मोटर का शब्द नहीं सुना। मोटरवालों ने मेरी आयु तथा दशा पर दया नहीं की, और मेरे चार कोड़े मारे। मेरे शरीर में जो ख़ून है, उसको मार खाने और अत्याचार सहने का अब तो स्वभाव हो गया है, परंतु पहले न था। जिस स्थान पर अदालत की कुर्सी है, उसी स्थान पर ग़दर से पूर्व मेरी आज्ञा से अनेकों धूर्तों और विद्रोहियों को दंड दिया गया था। मैंने निस्संदेह बदला लिया, और इन दोनों वीर युवाओं के सिर फाड़ डाले। अगर आप इन सज्जनों का न्याय करना चाहें, तो मैं आपके निर्णय के सम्मुख सिर झुकाने को तैयार हूँ।" बूढ़े के बयान से अदालत में सन्नाटा छा गया। मैजिस्ट्रेट साहब, जो अँगरेज़ थे, लेखनी को मुँह में लेकर बूढ़े को देखने लगे, और उनका सरिश्तेदार आँखों में आँसू भर लाया। दोनों वादी भी बयान सुनकर हक्के-बक्के रह गए। अदालत ने आज्ञा दी—"तुमको छोड़ा जाता है, और वादियों पर दस-दस रुपए जुर्माना किया जाता है; क्योंकि स्वयं उनके बयान से प्रकट है कि उन्होंने नशे की हालत

में प्रतिवादी पर आक्रमण किया।" इसके उपरांत मैजिस्ट्रेट ने चपरासी के द्वारा बूढ़े राजकुमार से पूछा—"तुम्हारी पेंशन सरकार से नियत नहीं हुई ? तुम ठेले का निकृष्ट कार्य क्यों करते हो ?" राजकुमार ने उत्तर दिया—"मुझे ज्ञात है कि अँगरेज़ी सरकार ने हमारे कुटुंबियों को पाँच-पाँच रुपए मासिक पेंशन नियत की है। परंतु मैं पहले तो वर्षों दिल्ली से दूर रहा, और इसके अतिरिक्त जब हाथ-पाँव चलते हैं, तो काम करके सपरिश्रम जीविका कमाना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुझे ठेले में तीन-चार रुपए प्रतिदिन मिल जाते हैं। दो रुपए प्रतिदिन बैलों का व्यय है, जिसमें घर का किराया भी सम्मिलित है, और रुपए-दो रुपए मुझको बच जाते हैं। मैं पाँच रुपए मासिक लेकर क्या करता ? आजकल मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और मुझको प्रत्येक बात की स्वतंत्रता है। जो लोग आपकी कचहरियों में नौकरियाँ खोजते फिरते हैं, और बी० ए०, एम्० ए० पास होने में आयु बिताते हैं, उनसे मुझ ठेलेवाले की दशा लाखगुनी अच्छी है। ठेला चलाने में कोई अपमान नहीं है। मैं बैलों का शासक हूँ। स्वयं बैल बनकर शासित नहीं बनना चाहता।"

(४)

ठेलेवाला राजकुमार पहाड़गंज की मसजिद में नमाज़ पढ़ रहा था, और उसी के समीप उसका घर था। वह नमाज़ पढ़ चुका, तो एक व्यक्ति उसके पास गया और कहा—"मैं आज कचहरी में उपस्थित था, और मैंने आपका बयान सुना था। क्या आप मुझको ग़दर का वर्णन बता सकते हैं कि आप ग़दर में और उसके उपरांत कहाँ-कहाँ रहे और आप पर क्या-क्या विपत्तियाँ पड़ीं ?" ठेलेवाले ने मुसकिराकर कहा—"क्या आप वह दशा सुन सकते हैं, और क्या आपको उन झूठी बातों पर विश्वास आ सकता है ? मेरा विश्वास है कि जो बात हो जाय, चाहे वह सुख की हो और चाहे

दुख की, झूठी है। उसका वर्णन करना झूठ बोलना है। आनेवाला काल केवल भ्रम है, बीता हुआ काल मिथ्या है, और वर्तमान काल सत्य है। मेरा विचार तो यह है कि जो समय सामने है, उस पर विश्वास करूँ और आनंद से उसे बिताऊँ। न गए हुए काल का स्मरण मन में आने दूँ और न आनेवाले समय की चिंता को मन में घुसने दूँ। बस, उसी समय को समझूँ, जो आँखों से दृष्टिगोचर होता हो।" प्रश्नकर्ता ने कहा—"यह तो आपके निजी अनुभव की बातें हैं। आपके हृदय को कष्टों और आपत्तियों ने संसार से उदास कर दिया है। मैं तो ग़दर की घटनाओं को लेख-बद्ध करने के लिये आपसे यह समाचार पूछता हूँ। मैंने इसी प्रकार और बहुत-सी घटनाएँ एकत्र की हैं, और राजकुमारों की आप-बीती घटनाएँ पूछ-पूछकर लिखी हैं।"

यह सुनकर राजकुमार खिलखिलाकर हँसा और कहा—"कदाचित् आप समाचार-पत्रवाले हैं। मैं उन लोगों से बहुत ही चिढ़ता हूँ। वे बहुत ही झूठ बोला करते हैं। अच्छा, आप मेरे घर पर चलिए। मैं अतिथि के हृदय को दुखाना नहीं चाहता। आप जो पूछेंगे, बताऊँगा।"

राजकुमार प्रश्नकर्ता को लेकर घर गया। घर क्या था, बस, छप्पर का एक मकान था। बाहर आँगन में दो बैल और एक गाय बँधी हुई थी। भीतर दालान में एक तख़्त बिछा हुआ था। बराबर एक पलँग था और दोनों पर सफ़ेद चाँदनियाँ पड़ी हुई थीं, जिससे दीन, परंतु परिश्रमी राजकुमार की मनोवृत्तियों का पता चलता था। राजकुमार ने प्रश्नकर्ता को तख़्त पर बैठाया, और स्वयं चौके से भोजन लाया। कहा—"आओ खाना खा लो, फिर बातें करेंगे।" खाना यद्यपि एक व्यक्ति के लिये था, परंतु दो प्रकार की भाजी, दाल-चटनी और कुछ मिष्टान्न इस बात का द्योतक था, उस अवस्था में

भी वह निर्भीक और आनंद में रहता था। प्रश्नकर्ता ने बहुत कुछ क्षमा माँगी, परंतु राजकुमार ने नहीं माना। दोनों ने भोजन किया। राजकुमार ने यह घटना वर्णन की—

(४)

मैं मिर्ज़ा बाबर का बेटा हूँ। मिर्ज़ा बाबर बहादुरशाह के भाई थे। ग़दर से पूर्व बहादुरशाह का शासन भारतवर्ष में न रहा था; पर उनकी प्रतिष्ठा प्रत्येक प्रांत, प्रत्येक नगर और प्रत्येक स्थान में थी, और दिल्ली में तो प्रत्येक मनुष्य उनके घराने का वही मान करता था, जो अकबर और शाहजहाँ के समय होता था। मैं अपने बाप का बड़ा लाड़ला बेटा था। इनके संतानें और भी थीं, परंतु अपनी माँ का मैं इकलौता था। मेरे पिताजी की मृत्यु ग़दर से पहले ही हो गई थी। जब ग़दर हुआ, और बाग़ियों की सेना दिल्ली में घुसी, तो जैसे अन्याचार उसने अँगरेज़ों पर किए, उनके लिखने से हृदय काँपता है। इसके उपरांत जब अँगरेज़ पंजाब से सहायता लेकर दिल्ली पर आए, और उसको जीत लिया, तो बादशाह सहित सब नगर-निवासीभाग निकले। मेरी माँ अंधी थीं, और आए दिन की बीमारी से बहुत ही दुर्बल हो गई थीं। रथ में सवार होना भी इनके लिये दूभर था। परंतु दो स्त्रियों की सहायता से मैंने उनको सवार किया, और स्वयं भी उसमें बैठकर दिल्ली से निकला। बादशाह इत्यादि तो हुमाऊँ के मक़बरे गए थे, पर मैं करनाल की ओर चला; क्योंकि वहाँ मेरे एक मित्र रहते थे, जिनसे दिल्ली में प्रायः मैं मिला करता था। वह करनाल के एक अच्छे रईस थे। हमारा रथ अजमेरी दरवाज़े से बाहर निकला। मार्ग तो लाहौरी दरवाज़े से था, परंतु उधर अँगरेज़ी सेना का भय था। जब हम चले, तो देखा, हज़ारों आदमी, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े बकुचियाँ सिरों पर रक्खे घबराए हुए चले जा रहे हैं। रथवाले ने कहा—"गुड़गाँव होकर करनाल

चलना चाहिए, जिससे सैनिकों के हाथों में न पड़ें।" गुड़गाँव तक तो हम आनंद-पूर्वक चले गए, यद्यपि मार्ग में गूजर इत्यादि मिले, परंतु टाल-मटोल करके उनके हाथों से बच गए। परंतु गुड़गाँव से जब करनाल की ओर मुड़े, तो दो कोस के उपरांत ही गूजरों के एक झुंड ने रथ को घेर लिया, और लूटना चाहा। अभी उन्होंने हाथ न डाला था कि सामने से एक अँगरेज़ी सेना का दस्ता आ गया। ये सब गोरे थे। इनको देखकर गूजर तो भाग गए, और गोरे घोड़े दौड़ाकर रथ के पास पहुँचे। उन्होंने ठट्ठा करके अँगरेज़ी में कुछ कहना प्रारंभ किया, जिसको मैं नहीं समझा। मैं रथ के पूर्व की ओर था। एक गोरे ने पश्चिमी ओर से रथ का पर्दा उठाकर देखा, और माताजी को अंधा और वृद्धा देखकर वह खिल-खिलाकर हँसा, और अपने साथियों से उसने कुछ कहा, जिसको सुनकर वे सब आगे बढ़ गए और हमसे कुछ न कहा। वे चले गए, तो हम आगे बढ़े, और सायंकाल तक चलते ही गए। रात को एक गाँव के समीप ठहरे। वहाँ रात को हमारे बैलों की चोरी हो गई, और रथवान् भी कहीं भाग गया। प्रातःकाल को मैं बहुत ही चिंतित हुआ। गाँववालों से जाकर किराए की गाड़ी माँगी। ये जाट थे। उनका चौधरी मेरे साथ आया, और बोला— "गाड़ी तो हमारे यहाँ नहीं है। तुम अपनी माँ को हमारे यहाँ ठहरा दो। दूसरे गाँव से गाड़ी मँगवा देंगे।" मैंने इस पर संतोष किया, और माता को लेकर चौधरी के घर में चला गया। हमारे पास एक पिटारी थी, और एक छोटा संदूक़। उन दोनों में अशर्फ़ियाँ और जड़ाऊ गहना था। हमें घर में उतारकर और सब सामान रखकर चौधरी ने एक आदमी दूसरे गाँव से गाड़ी लाने के लिये भेजा। थोड़ी देर में गाँववालों ने हल्ला मचाया कि अँगरेज़ी सेना आती है। चौधरी मेरे पास आया, और कहा—"जाओ, तुम

घर से भाग जाओ, नहीं तो हम भी तुम्हारे साथ मारे जायँगे।" मैं बहुत घबराया, और चौधरी से कहने लगा—"अंधी माँ को लेकर कहाँ जाऊँ? तुमको मेरी दशा पर तरस नहीं आता?" यह सुनकर उस जाट ने मेरे एक मुक्का मारा, और कहा—"तेरे लिये हम अपनी गर्दन कटवा दें?" मैंने भी उसके थप्पड़ मारा। यह देखते ही जाट एकत्र हो गए और उन सबने मिलकर मुझको खूब पीटा। मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। जब होश में आया, तो मैंने अपने को एक जंगल में पड़ा पाया, और माँ मेरे सिरहाने बैठी रो रही थीं। माँ बोलीं—"वे जाट तुझको और मुझको एक चारपाई पर उठाकर यहाँ डाल गए हैं। मालूम होता है, हमारा सामान लूटने का उन्होंने वह बहाना किया था। सेना-बेना कुछ न आई थी।" वह बड़ा कठिन समय था। वह अगम्य और निर्जन स्थान, धूप की तीव्रता, एक मैं और एक मेरी दुर्बल अंधी-धुंधी माँ, चारों ओर सन्नाटा, वैरियों का डर, मार्ग की अनभिज्ञता और घावों की पीड़ा ने सोने पर सुहागे का काम किया। माँ ने कहा—"बेटा, चलो, साहस करके आगे बढ़ो। यहाँ जंगल में पड़े रहने से कोई लाभ नहीं। मैं खड़ा हो गया। सिर में और बाहों में घाव थे। पैरों में भी चोट थी। पर अंधी माँ का हाथ पकड़कर चलना प्रारंभ किया। काँटे-दार झाड़ियाँ चारों ओर फैली हुई थीं, जिन्होंने शरीर के कपड़े फाड़ डाले, और पैरों को घायल कर दिया। माँ ठोकर खा-खाकर गिर पड़ती थीं, और मैं उनको सँभालता था। पर घावों के मारे मुझमें भी चलने की शक्ति नहीं थी। दो वक़्त से हमने कुछ खाया न था। बस, ऐसा समय परमात्मा वैरी को भी न दे। जब मध्याह्न का सूर्य सिर पर आया, तो मेरे सिर के घाव में इतना कष्ट हुआ कि मैं चकरा-कर गिर पड़ा। होश था; पर उठने और चलने की शक्ति न थी। माँ ने मेरा सिर अपने घुटनों पर रख लिया, और यह प्रार्थना की—

"भगवन्! मुझ पर दया कर। मेरे पापों को क्षमा कर दे और मेरे बच्चे की जान को बचा ले। परमात्मन्! यह अंधी राजकुमारी तेरे आगे हाथ फैलाती है। उसको वंचित न कर। हमारे तेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है। पृथ्वी-आकाश हमारे शत्रु हैं। तेरे अतिरिक्त और किससे मैं कहूँ? तू जिसको चाहे प्रतिष्ठा दे, जिसको चाहे अपमान दे। हम देशों, हाथी-घोड़ों और दास-दासियों के स्वामी थे। आज उनमें से हमारे पास कुछ भी नहीं। किस बूते पर संसारवाले इस अनित्य संसार में जीवित रहने की इच्छा करते हैं? पापों के लिये क्षमा, भगवन्! दया, दया, भगवन् दया कीजिए।"

माँ प्रार्थना कर रही थीं कि इतने ही में एक गँवार उधर आ निकला। उसने कहा—"बुढ़िया, तेरे पास जो कुछ हो, डाल दे।" माँ बोलीं—"बेटा! मेरे पास तो केवल इस घायल बीमार के और कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर उस गँवार ने एक लट्ठ माँ के सिर पर मारा। लट्ठ के लगते ही माँ के मुँह से एक चीख़ निकली, और उन्होंने कहा—"हाय निर्दयी, मेरे बच्चे को न मारियो!" मैं साहस करके उठा। परंतु फिर चकराकर गिर गया, और बेहोश हो गया। गँवार ने मेरे और माँ के कपड़े उतार लिए। मुझे होश आया, गँवार चला गया था। हम दोनों नंगे पड़े थे। माँ दम तोड़ रही थीं। मैंने उनसे पूछा—"अम्मा, क्या हाल है?" उन्होंने उखड़े-उखड़े स्वर से कहा—"बेटा, अब मैं चलती हूँ। तुझे ईश्वर पर छोड़ती हूँ। हाय, कफ़न भी न मिलेगा! अरे क़ब्र तक न मिलेगी! मैं भारत-सम्राट् की भावज हूँ।" यह कहकर वह सदा के लिये ठंडी पड़ गई। मैंने वहीं रेत समेटी, और शव को धूल में छिपा दिया। स्वयं भी बड़ी कठिनाई से घसिट-घसिटकर एक वृक्ष के नीचे जाकर लेट गया। थोड़ी देर में एक सैनिक वहाँ होकर निकला, और मुझको देखकर निकट आया। मैंने संपूर्ण समाचार उससे

कहा। उसने कमर का रूमाल खोलकर मुझको दिया, जिससे मैंने तहबंद बाँधा। फिर उस सवार ने मुझको उठाकर घोड़े पर पीछे बिठाया, और अपनी छावनी में ले गया। वहाँ उसने मेरी दवा कराई, जिससे मेरे घाव अच्छे हो गए। फिर मैं उसकी सेवा करने लगा। वह मुसलमान सवार बड़ा ही सज्जन था। उसका घर पटियाले में था। उसके साथ कुछ दिनों तो मैं पटियाले में रहा, फिर फ़क़ीर होकर नगरों में घूमने लगा। जब बंबई पहुँचा, तो ख़ैराती दल के साथ मक्के चला गया। वहाँ दस वर्ष बीत गए। वहाँ से मदीने गया। पाँच वर्ष वहाँ रहा। इसी प्रकार अन्य तीर्थ-स्थानों के दर्शन करता हुआ बग़दाद आया। बग़दाद से एक व्यक्ति के साथ कराची आया, और वहाँ से दिल्ली आ गया; क्योंकि दिल्ली का प्रेम मुझको प्रत्येक स्थान में विह्वल किए रहता था। दिल्ली में आकर मैंने रेल पर नौकरी कर ली, जिससे खाने के अतिरिक्त कुछ बचत भी होने लगी। दो वर्ष में मेरे पास तीन सौ रुपए हो गए। तब मैंने ठेलेवाले के साझे में एक ठेला बनाया। उसकी आमदनी से धीरे-धीरे साझी के दाम डाल दिए और मेरा निजी ठेला हो गया। अब इसी पर मेरा निर्वाह है।

प्रश्नकर्ता ने कहा—"बहरापन कब हुआ, और उससे तो आपको अकेले में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता होगा?" राजकुमार ने हँसकर उत्तर दिया—"परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ। कोई कष्ट नहीं होता। सारे संसार के दोष सुनने से कान बंद हैं। गाँवों में जब जाटों ने मारा था, उसी समय मस्तिष्क पर ऐसी चोट आई कि कान की श्रवण-शक्ति जाती रही। अब केवल बाएँ कान से कुछ सुन सकता हूँ। दाहना संपूर्णतया बेकार है।" यह उपदेश-प्रद घटना सुनकर प्रश्नकर्ता राजकुमार से उसको लेख-बद्ध करने की आज्ञा चाही। राजकुमार ने कहा—"अवश्य लिखो; परंतु यह भी लिख देना कि

प्रत्येक बीती हुई बात, प्रत्येक बीता हुआ क्षण और प्रत्येक प्रकार का बीता हुआ सुख-दुख मिथ्या और अनित्य है; पर वे उपदेश-पूर्ण अवश्य हैं।"

दसवाँ अध्याय

फ़क़ीर राजकुमार की संपत्ति

हीरे को चाहो, मोती पर जान दो, सोने-चाँदी को जीवन-संपत्ति समझो, शाल-दुशाले और सुनहरी काम की वस्तुओं से जी लगाओ, हाथी-घोड़े, पालकी-नालकी, महल और हवेली को आवश्यक समझो; तुम्हें वे ग्राह्य हो सकती हैं; पर संसार में ऐसे लोग भी हैं, जो इन मिटनेवाली वस्तुओं को दो कौड़ी का समझते हैं, और परमपद के आनंद के सम्मुख संसार के इन भोगों पर दृष्टि नहीं डालते। परमात्मा अपना प्रेम जिसको देता है, उसमें अमीर और ग़रीब, बड़े और छोटे, और कमीन और कुलीन का झंझट नहीं है।

दिल्ली का क़िला बसा हुआ था। मुग़ल-बादशाह जीवित थे। उस समय की घटना है। बहादुरशाह के संबंधियों में एक राजकुमार को भगवत्-भजन की लगन लग गई थी। घर में परमात्मा ने दास-दासी, नौकर-चाकर और हाथी-घोड़े, सब कुछ दिया था। परंतु वह भगवत्-भक्त सबसे अलग मकान के एक कोने में पड़ा रहता। दो जौ की रोटियाँ प्रातःकाल और दो सायंकाल खाता, सकोरे में पानी पीता और ईश्वर-भजन में तल्लीन रहता। हाँ, स्वच्छ कपड़े और इत्र की उसे बड़ी चाह थी। एक संदूक़ में भिन्न-भिन्न प्रकार के इत्र भरे रहते, जिनसे वह प्रत्येक नमाज़ के समय एक नवीन इत्र से वस्त्र बसाते और परमात्मा के सम्मुख सुगंधित होकर हाथ जोड़ते। संसार में उनको औलाद, माल, कुटुंब या कुटुंबियों से प्रेम न था। बस, दो वस्तुओं पर जान देते थे। एक इत्र और एक हरे रंग का मुर्ग़ों का जोड़ा। प्रार्थना और स्तुति से निपटते, तो बाहर आकर

हरे रंग की मुर्ग़ी के जोड़े को दाना-पानी देते। उनको देखकर कभी हँसते, कभी रोते। कदाचित् उनको देखकर ईश्वर की माया का विचार करते होंगे।

गदर की भगदड़

सन् १८५७ ई० का ग़दर हुआ, और सब दिल्लीवाले शहर से निकले। बादशाह, उनकी बेगमों और राजकुमारियों ने भी क़िला छोड़ा, तो वह राजकुमार भी अपनी आसन-चटाई बग़ल में दबाकर खड़े हो गए। नौकरों ने प्रार्थना की कि वह हीरे और अशर्फ़ियाँ साथ लें। परंतु उन्होंने उत्तर दिया—"यह सब कुछ तुमको दिया जाता है। हमको किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा का नाम ही यथेष्ट है।"

यह कहकर और अपने इत्र का संदूक़ और हरे रंग की मुर्ग़ियों के दो अंडे लेकर चल खड़े हुए। लोगों ने समझाया—"श्रीमन्, आप यह क्या करते हैं? खाने-पीने का सहारा साथ लेना चाहिए। यह इत्र और अंडे किस काम आवेंगे? रुपया-पैसा लो, जिससे निर्वाह हो।" परंतु उन्होंने किसी का कहना न माना। उनके एक छोटी लड़की और एक स्त्री थी। उनको नौकरों के सिपुर्द किया, और कहा—"इनके साथ रहो। जहाँ ये चाहें, इनको साथ ले जाओ। घर में जो नक़दी है, ले लो। चाहे तुम रक्खो, चाहे इन स्त्रियों पर व्यय कर दो। मुझे न स्त्री का साथ देना है, न लड़की का, और न रुपए-पैसे का।"

राजकुमारी और उसकी पुत्री

फ़क़ीर राजकुमार इत्र और अंडे लेकर दरगाह निज़ामुद्दीन में आ गए और दरगाह के बाहर एक खँडहर मकान में बैठ गए। एक देशी मुर्ग़ी का जोड़ा मोल लिया, वे दोनों अंडे इनके नीचे बिठा दिए और ईश्वर-भजन प्रारंभ कर दिया। कोई रोटी दे गया, तो खा ली,

नहीं तो भूके पड़े रहे। हाँ, नमाज़ पढ़ते, तो इत्र लगाकर पढ़ते; क्योंकि उनके संदूक़ में इत्र बहुत था।

नौकर उनकी स्त्री और लड़की को लेकर गुड़गाँव चले गए, और उसके पास सुहना में एक मकान लेकर रहने लगे। कुछ दिनों तक तो उन नौकरों ने उन असहाय स्त्रियों की सेवा की; परंतु रुपया-पैसा अपने पास होने के कारण उनको लालच का सूझी। एक दिन स्त्रियों को अकेला छोड़कर भाग गए और लड़की साथ ले गए। बेचारी राजकुमारी जो प्रातःकाल उठी, और नौकरों को आवाज़ दी, तो कोई न बोला। बाहर झाँककर देखा, तो मैदान साफ़ पाया। बहुत रोई। हिरासा हुई। अब न कोई आटा लानेवाला था, न पानी भरनेवाला; और न कुछ पास था, जिसको व्यय करके कुछ मँगाती। लड़की की आयु छः वर्ष की थी, और वह इतनी छोटी थी कि उसे इस बात का ज्ञान न था कि उस पर और उसके कुटुंबियों पर क्या-क्या आपत्ति आ रही थी। चारपाई से उठते ही हलुआ माँगती थी, और उसकी माँ प्रातःकाल से ही उसे तैयार रखती थी। उस दिन नौकर न थे। सौदा कौन लाता और हलुआ कहाँ से बनता! लड़की ने रोना शुरू किया, और वह मचलने लगी। अपनी माँ की कठिनाई को दुगना कर दिया। उदास राजकुमारी ने पड़ोसी सक़्क़ा को बुलाया, और अपने हाथ के सोने के कड़े देकर कहा—"इनको बेचकर खाने का सामान ला दो।" सोने के कड़े देखकर सक़्क़े के मुँह में पानी भर आया। चुपके से उनको ले लिया, और दो-चार रुपए का आटा, घी, चीनी इत्यादि ला दिया। राजकुमारी ने शेष रुपए माँगे, तो कहा—"जिस बनिए के हाथ कड़े बेचे हैं, उसने शेष दाम अभी दिए नहीं।" राजकुमारी चुप हो गई। रात को सक़्क़ा ने उसके घर में आकर जब वह सोती थीं, सारा सामान कपड़े-लत्ते समेट लिया, और चल दिया। प्रातःकाल राजकुमारी

उठीं, तो बहुत रोई। मुहल्लेवालों को पुकारा। ज्ञात हुआ, सक्का पड़ोस से कहीं चला गया। यह काम उसी का होगा। उस समय उसने कड़ों की बात भी कही। एक घोसी की स्त्री ने तरस खाकर कहा—"बहन, अब मैं तेरे पास रहा करूँगी। तू घबरा मत।" राजकुमारी के पास उन कड़ों के अतिरिक्त और कोई गहना न था। कुछ दिन तो रक्खे हुए आटा से बिताए, और उसके उपरांत घोसिन ने अपने यहाँ से खिलाया। एक दिन घोसिन के लड़के ने नन्हीं-सी राजकुमारी को धक्का दिया, जिससे उसकी भौं फट गई और ख़ून बह निकला। राजकुमारी की वही एक लड़की थी। उसने घोसिन के लड़के को बुरा-भला कहा। उस पर घोसिन बिगड़ी, और कहा—"हमारी कृपा को भूल गई। हमारे टुकड़े खाती है, और हमीं को आँखें दिखाती है।" राजकुमारी से यह ताना न सुना गया, और आँखों में आँसू भरकर कहा—"अरी तू मुझको क्या रोटी खिलावेगी। मैं उस बाप की बेटी हूँ, जो संपूर्ण भारतवर्ष को रोटी खिलाता था, जिसके द्वार पर हाथी झूमते थे, जो दीन-हीन और निराश्रय लोगों का शरणागत था। आज यदि मैं धनहीन हो गई, तो क्या मेरी कुलीनता और सौजन्य भी जाता रहा? मैं तेरे ताने न सहूँगी, और आज से तेरी रोटी न खाऊँगी। तेरे बच्चे मेरी भोली नासमझ बच्ची को तंग घायल करें, और मैं चुपकी बैठी देखूँ? मुझसे यह न हो सकेगा। तूने जितने दिनों रोटी हमें खिलाई है, मैं उसका बदला दूँगी, और जब परमात्मा मेरे दिन फेरेगा, तो तेरा सब बोझा उतार दूँगी।"

स्वप्न का साँप

उस दिन शोक में राजकुमारी ने कुछ न खाया, और बच्ची घावों के कष्ट में पड़ी रही। उसने भी खाने को कुछ न माँगा। रात को राजकुमारी ने स्वप्न देखा कि रात को उसे एक साँप ने निगल लिया

और उसके भीतर एक बाग़ लगा हुआ है। बाग़ में एक तख़्त पर उसके पति, फ़क़ीर राजकुमार बैठे हैं, और उनकी लड़की अपने सिर का घाव उनको दिखाती और कहती है—"देखो पिताजी, बेलिन के लड़के ने मेरा सिर फोड़ डाला।" इस पर फ़क़ीर राज-

कुमार ने हाथ से संकेत किया। दो देवी दूत आकाश से उतरे, और उन्होंने एक साँप लड़की के गले में डाल दिया। राजकुमारी यह देखकर डरी और चिल्लाई। चिल्लाते ही आँख खुल गई, तो सुना,

द्वार की कोई कुंडी खटखटा रहा है। उन्होंने कहा—"कौन है ?" उत्तर आया—"तुम्हारा पति।" राजकुमारी आश्चर्यान्वित हो गई। वह शब्द वास्तव में उसके पति फ़क़ीर राजकुमार का था। कुंडी खोल दी। वह भीतर आए, और कहा—"चलो, गाड़ी तैयार है।" राजकुमारी ने कहा—"कहाँ? कहाँ चलूँ, और तुम कहाँ से आए?" इसका उन्होंने कुछ उत्तर न दिया, लड़की को गोद में उठा लिया, और राजकुमारी को साथ चलने का संकेत किया। वह चुपचाप उनके साथ हो गई। बाहर गाड़ी खड़ी थी। उसमें सवार करके दरगाह निज़ामुद्दीन में ले आए। जब वहाँ पहुँचे, तो एक घर में उनको और लड़की को उतारा, और स्वयं बाहर चले गए। राजकुमारी ने देखा, घर में सब आवश्यक वस्तुएँ रक्खी हुई हैं, और एक छोटा संदूक़ रक्खा है। उसको जो देखा, तो उसमें दो हज़ार की मुहरें रक्खी थीं। राजकुमारी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि फ़क़ीर राजकुमार सुहना पहुँचे, और वह सब सामान कहाँ से आ गया। थोड़ी देर में एक मनुष्य ने आवाज़ दी—"तुम्हारे पति की अर्थी तैयार है। लड़की को उनकी सूरत दिखा दो, ताकि हम उनको गाड़ दें।" मुझे घबराहट हुई और मेरे आश्चर्य की सीमा न रही कि अभी तो उनको गए आध घंटा भी नहीं हुआ, और मर गए। बुलानेवाले से राजकुमारी ने कहा—"तुम कौन हो, और मेरे पति कब मर गए ?" उसने कहा—"इसका समाचार मुझे ज्ञात नहीं। राजकुमार की यह वसीयत थी कि अंत समय उनकी लड़की को वह दिखा दिए जायँ।" राजकुमारी ने लड़की को साथ कर दिया और स्वयं हृदय थामकर बैठ गई। थोड़ी देर में लड़की लौट आई, और कहा—"पिताजी को लोगों ने गाड़ दिया।" लड़की की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि वह आदमी फिर आया, और कहा—"सुहनावाली घोसिन को

पुरस्कार दे दिया गया। अब उसकी तुम पर कोई कृपा शेष नहीं।" ये आश्चर्य-जनक घटनाएँ राजकुमारी को असह्य-सी हो गईं, और वह बेहोश हो गई। जब वह होश में आई, तो एक बुढ़िया को अपने पास बैठा देखा। बुढ़िया ने कहा—"तुम मेरे साथ चलो। वहाँ पर तुम्हारे पति ने एक घर का प्रबंध कर दिया है। वह मनुष्य, जो तुम्हें बुलाने गया था, तुम्हारे पति का प्रेत था, और जिस दिन तुम्हारी लड़की के चोट लगी थी, उसी दिन तुम्हारे पति की मृत्यु हुई थी। राजकुमारी ने अपने वैधव्य के बहुत-से दिन काटे, और अपनी लड़की का विवाह कर दिया। थोड़े दिन के उपरांत उसका देहांत हो गया।

ग्यारहवाँ अध्याय

लेडी हार्डिंग का चित्र

"अम्मा, यह चित्र उन्हीं वायसरानी का है, जिन्होंने हमको एक हज़ार रुपए दिए हैं।"

"हाँ बेटी, यह चित्र बड़े लाट की सहधर्मिणी का है। बड़ी दयालु हैं। दीनों की पालिका हैं। अबके हम बेसहारों का भी ख़याल आ गया। तनिक इस चित्र को मुझे देना। मैं इनको आशीर्वाद दूँ, इन पर निछावर जाऊँ, और दो बातें करके हृदय की उमस निकालूँ।"

भावुकता की लहर में

मैं निछावर जाती हूँ। आप बड़ी अच्छी हैं। मैं क़ुर्बान। क्या भव्य मूर्ति है। परंतु आप दीनों की कुटिया में कैसे आईं? हमारे यहाँ तो फटे कंबल का टुकड़ा भी बिछौने को नहीं है। मैं आपको कहाँ बिठाऊँ? खटिया भी हमारे भाग्य में नहीं। हम सब नीचे सोते हैं। धरती बड़ी ठंडी है। आपको ज़ुकाम हो जायगा। हमारे घर की कड़ियाँ भी झुकी हुई हैं। ऐसा न हो, गिर पड़ें। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? क्या वस्तु आपके थाल में रक्खूँ? परसों से हमने कुछ नहीं खाया। पिताजी को बनिए ने आटा उधार नहीं दिया। इस समय भूख के मारे मेरी विचित्र दशा है। यदि घर में कुछ होता, तो आपके सम्मुख रख देती। मैं भूखी रहती, और आपको खिलाती; क्योंकि आपने हम पर कृपा की है, और उस समय हमारी सुध ली है, जब संपूर्ण संसार हमको भूल गया था। क्यों श्रीमतीजी! आपका चित्त इस अँधेरे घर में घबराता तो नहीं? आप तो बिजली

की रोशनी में रहती हैं। क्या करूँ, आज हमको मिट्टी का दीपक भी मयस्सर नहीं, नहीं तो उसे ही जला देती। आपको कहाँ सुलाऊँ? रात कैसे कटेगी? हमारे पास केवल दो फटे कंबल हैं। एक पिताजी ओढ़ते हैं, और एक में अम्मा मुझे साथ लेकर सोती हैं। मेरी प्यारी लाट साहब की धर्मिणी, तनिक मेरे हाथों और पैरों को देखो। सर्दी से फट गए हैं। सर्दी की रातें पहाड़ हो जाती हैं। सुख की नींद हमारे स्वप्न में भी नहीं आती। आपने हमको हज़ार रुपए दिए हैं। मैं सहस्रों धन्यवाद आपको देती हूँ। अम्मा कहती हैं—"एक समय हमारा भी था। हम भी हज़ारों रुपया दीन-हीन जनों को बाँटा करते थे। हमारे घरों में भी ऊनी क़ालीन और मख़मली बिछौने थे। रेशम और ज़री के पर्दे थे। सोने-चाँदी की जड़ाऊ छतें थीं। शाल-दुशाले थे। दास-दासी थे। महल थे, और भारतवर्ष का साम्राज्य था। हमारे सम्मुख भी गर्दनें झुकती थीं। राजा-महाराजा संकेत के लिये प्रतीक्षक रहते थे। हमारे घरों में भी कपूर की बत्तियाँ जलती थीं। हम भी लाचार और असहाय लोगों पर तरस खाते थे। दूसरों के लिये घर लुटाते थे। हमारे स्वागत में भी ढोल बजते थे। चोबदार थे। हाथी झूम-झूमकर चलते थे। हमारे सिर पर भी मुकुट था। तलवारें हमारे पैरों पर सिर टेककर चलती थीं। तोपें गरज-गरजकर हमारे स्वागत के लिये बरसती थीं। परंतु देवी, अब वह समय कहाँ है? संसार ढलती-फिरती छाया है।

ऊँचे-ऊँचे मकान थे जिनके: आज वे तंग गोर * में हैं पड़े।
इत्र मिट्टी का जो न मलते थे: न कभी धूप में निकलते थे।
गर्दिशे † चर्ख़ ‡ से हलाक हुए: उस्तख़्वाँ § तक भी इनके ख़ाक हुए।
ज़ाते माबूद + जाविदानी × है: बाक़ी जो कुछ कि है, वह फ़ानी ÷ है।

---

* क़ब्र † चक्र ‡ आकाश § हड्डियाँ + परमात्मा × पवित्र ÷ मरनेवाला।

परमात्मा ने हमको देन दी। जब तक उसके योग्य रहे, देन पास रही, और जब हमारी करनी बिगड़ी, विलासिता में पड़ गए, देश से हीन हो गए। पीड़ितों को भूल गए। चिकनी-चुपड़ी बातों पर फूल गए। परमात्मा ने वह संपत्ति छीन ली और दूसरों को दे दी। इसमें हमको किसी की शिकायत नहीं। जैसी करनी वैसी भरनी। हाँ, आप मेरी मा के बराबर, बरन् उनसे भी बड़ी हैं। आपसे न कहूँ, तो किससे कहूँ? यहाँ भी न बोलूँ, तो कहाँ जीभ खोलूँ। परमात्मा ने आपको हम सबका रखवाला बनाया है। देखो तो, भूख-प्यास हमको सताती है। हमारे अल-बेले दिन धूल में मिलाती है। मेरी आयु ऐसी थी कि मेरा मुख भी गुलाबी और कोमल होता। पर भूख के मारे पीला पड़ गया है। हमारे घर में तीज-त्योहार का आनंद नहीं। त्योहार-उत्सव के दिन भी हम पेट में टाँगें अड़ाकर पड़ रहते हैं। पेट भरकर सूखी रोटी भी नहीं मिलती। हम चिथड़े पहने हुए हैं। हमको बरसात के टपके के खटके रात दिन रुलाते हैं। हमको शीतकाल जलाने आता है। हम पर गर्मियाँ प्रलय ढाती हैं। दिल्ली शहर के कुत्ते पेट भरकर सोते हैं। कौए संतुष्ट होकर घोंसलों में जाते हैं। चिड़ियाँ पक्की छतों के घर में, गिलहरियाँ सुंदर और सजे हुए घरों में रहती हैं। परंतु अकबर की औलाद, शाहजहाँ के बच्चे, जिन्होंने इस शहर को जीता और बनाया, आधी रोटी के टुकड़े को तरसते हुए भूखे सोते हैं। उनकी कोई भी रात चिंता-विहीन नहीं कटती। जिनके बाप-दादों ने लाल क़िला बनवाया था, उनको टूटा झोंपड़ा भी नसीब नहीं।

भिखारिन राजकुमारी जामा मसजिद की सीढ़ियों पर

श्रीमतीजी, आपने देखा होगा, दिल्ली नगर में एक जुम्मा मसजिद है, जिसको हमारे दादा शाहजहाँ ने बनवाया था। दूर-दूर के लोग इसको देखने आते हैं। परंतु इस बात को कोई नहीं देखता कि मसजिद

की सीढ़ियों के सामने फटे हुए बुर्क़ों के भीतर दुर्बल बच्चे को गोद में लिए, पैवंद लगा पाजामा और फटी-फटाई जूतियाँ पहने कौन स्त्री भीख माँगती है। देवी, वह दीन-दुखिया विधवा राजकुमारी है, जिसका कोई वारिस नहीं रहा। आप विश्वास करना, मेरी दयालु वायसरानी! इसी के दादा शाहजहाँ ने यह मसजिद बनवाई थी। आज यह पेट के लिये भीख के टुकड़े एकत्र कर रही है, जिससे जीवन की मसजिद को आबाद करे। मुझे लज्जा आती है। आपसे कैसे कहूँ कि ये हज़ार रुपए बहुत थोड़े हैं। मरहम के एक छोटे फाए से क्या होगा? हमारे तो संपूर्ण शरीर पर घाव हैं। आपकी नवीन दिल्ली की ख़ैर, जिसकी सड़कों पर लाखों रुपए व्यय हो रहे हैं। आपकी नवीन अट्टालिकाओं की ख़ैर, जिनके लिये करोड़ों रुपए की स्वीकृति है। आपके इस पवित्र विचार की ख़ैर, जिसके कारण दिल्ली की पुरानी इमारतों की मरम्मत हो रही है, और असंख्य रुपए व्यय किए जा रहे हैं। हमारे पेट की अधूरी सड़कों का भी जीर्णोद्धार कर दीजिए। हमारे टूटे हुए हृदयों पर अट्टालिका बनवाइए। हम भी पुराने काल के चिह्न हैं। हमको भी जीवित लोग पुरातत्त्व का चिह्न समझते हैं। हमें सहारा दीजिए। मिटने से बचाइए। परमात्मा आपको सहारा देगा और मिटने से बचावेगा।"

यह कहते-कहते दुखिया राजकुमारी चौंकी। अश्रुपूरित आँखों को दोनों हाथों से मला, और कहा—"मैं क्या पागल हूँ, जो चित्र से बातें करती हूँ? काग़ज़ी मूर्ति के सम्मुख मनोकामना माँगती हूँ। पर कदाचित् किसी ईश्वर-भक्त तक ये पागलपन की बातें पहुँच जायँ, और वह अँगरेज़ी में अनुवाद करके दयालु श्रीमती लेडी हार्डिंग को यह सुना दे। वह अपने पति लॉर्ड हार्डिंग से कहें, कौंसिल के सदस्यों से कहें, श्रीमान् सम्राट् और सम्राज्ञी से कहें कि शाहजहाँ की औलाद की रक्षा के लिये भी, नवीन दिल्ली की अन्य

स्वीकृतियों के साथ, कोई शानदार कष्टनिवारिणी स्वीकृति होनी चाहिए।*

दुखिया राजकुमारी की कहानी

जिस नन्ही राजकुमारी की ऊपर कल्पित कहानी लिखी गई है, उसकी माँ पर ग़दर के समय बड़ी विपत्ति पड़ी थी। इसलिये वह वास्तविक और सत्य कहानी भी व्यक्त की जाती है। वह कहती हैं—"ग़दर में मेरी आयु सात वर्ष की थी। अम्मा मुझे तीन वर्ष की छोड़कर मर गई थीं। पिताजी के पास रहती थी। चौदह वर्ष का मेरा एक भाई जमशेदशाह था। पर हाथ-पाँव की उठान से बीस वर्ष का प्रतीत होता था। पिताजी अंधे हो गए थे, और सदा घर में बैठे रहते थे। ड्योढ़ी पर चार नौकर और एक दारोग़ा, घर में तीन बाँदियाँ और एक मुग़लानी काम करती थीं। बहादुरशाह संबंध से हमारे दादा होते थे, और हमारा संपूर्ण व्यय शाही कोष से आता था। हमारे घर में एक बकरी पली हुई थी। एक दिन मैंने उसके बच्चे को सताना शुरू किया। बकरी ने बिगड़कर मेरे ठोकर मार दी। मैंने क्रोध के मारे चिमटा गरम करके बकरी के बच्चे की आँखें फोड़ डालीं। वह बच्चा तड़प-तड़पकर मर गया। कुछ दिनों के उपरांत ग़दर हुआ। बादशाह के निकलने के उपरांत हम भी पिताजी के साथ निकले। हम लोग पालकी में सवार थे, और जमशेद भाई घोड़े पर साथ-साथ थे। दिल्ली-दरवाज़े से निकलते ही सैनिकों ने पालकी पकड़ ली। भाई को भी गिरफ़्तार करना चाहा। उन्होंने तलवार चलाई। एक अफ़सर को भी घायल किया। अंत में घावों से चूर होकर गिर पड़े। सामने नोकदार पत्थर पड़े थे। वे आँखों में घुस गए, और भाई ने चीख़ें मार-मारकर थोड़ी देर में

---

* स्वर्गीया श्रीमती लेडी हार्डिंग ने इस लेख पर विचार करके दीन राजकुमारियों की सहायता कर दी थी।—लेखक

जान दे दी। भाई का करुण रुदन सुनकर पिताजी भी पालकी से नीचे उतर आए, टटोल-टटोलकर शव के समीप गए और पत्थर से टकराकर सिर को लहू-लहान कर लिया। यहाँ तक कि उनकी भी समाप्ति वहीं हो गई। इसके उपरांत सैनिकों ने हमारा सब सामान ले लिया, और मुझको भी पकड़ लिया। चलते समय बाप और भाई की लाश से चिमटकर ख़ूब रोई, और उनकी अंत्येष्टि क्रिया देखे बिना उनको वहीं छोड़कर चलने को बाध्य की गई। एक देशी सैनिक ने अफ़सर से मुझे माँग लिया, और अपने घर पटियाला राज्य में ले गया। उस सैनिक की स्त्री बड़ी ही कर्कश स्वभाव की थी। वह मुझसे बर्तन मँजवाती, मसाला पिसवाती, झाड़ू दिलवाती और रात को पाँव दबवातीथी। पहले-पहले तो एक दिन-रात के परिश्रम से थक गई। पाँव दबाने में झपकी आई, तो उस राक्षसी ने चिमटा गरम करके मेरी भौं पर रख दिया, जिससे पलकें तक झुलस गईं और भौहों की चरबी निकल आई। मैंने पिताजी को पुकारा; क्योंकि मुझे इतनी समझ न थी कि मरने के उपरांत फिर कोई नहीं आया करता। जब उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, तो मैं उस स्त्री के भय के मारे सहमकर चुप हो गई। परंतु उस पर उसको तरस न आया। बोली, पाँव दबा। घावों के कष्ट से मुझे नींद न आती थी, और पैर भी न दब सकते थे। पर 'फ़क़ीर का क्रोध फ़क़ीर के लिये ही है।' * मैंने उसी दशा में पाँव दबाए।

प्रातःकाल मसाला पीसने में मिर्चों का हाथ घावों पर लग गया। उस समय मुझे ताब न रही, और भूमि पर मछली की भाँति तड़पने लगी। परंतु निर्दय स्त्री को तब भी कुछ ख़याल न आया, और बोली—"चल ढोंगिन, काम से जी चुराती है?" यह कहकर पिसी हुई मिर्चें घावों पर मल दीं। उस समय मारे कष्ट के बेहोशी आ

---

* 'क़हर दुरवेश बरजान दुरेश।'

गई, और रात तक होश न आया। प्रातःकाल जो आँख खुली, तो बेचारा सिपाही—उसका पति—मेरे घावों को धोकर ओषधि लगा रहा था। थोड़े दिनों पश्चात् सिपाही की वह स्त्री मर गई, और उसने नवीन विवाह किया। उसकी नवीन स्त्री मेरे ऊपर बड़ा दयाभाव रखती थी। उसी के घर में मैं युवती हुई, और उसने मेरा विवाह एक दीन पुरुष के साथ कर दिया। दो वर्ष तक मेरा पति जीवित रहा, और फिर मर गया। विधवा होकर मैं दिल्ली चली आई; क्योंकि वह सिपाही भी मर गया था, और उसकी विधवा ने दूसरा विवाह कर लिया था। दिल्ली में आकर मैंने भी दूसरा विवाह कर लिया, जिससे केवल एक लड़की हुई। मेरे पति की पाँच रुपया मासिक अँगरेज़ी सरकार से पेंशन थी। परंतु वह क़र्ज़ में चली गई, और अब हम बड़ी कठिनाई और दीनता से दिन बिता रहे हैं।

बारहवाँ अध्याय

राजकुमारी की शय्या

गुलबानू पंद्रह वर्ष की हुई। युवावस्था की रातों ने गोद में लेना प्रारंभ किया। मनोकामनाओं के दिन हृदय में गुदगुदाने लगे। बहादुरशाह के उत्तराधिकारी मिर्ज़ा दारुलबख़्त बहादुरशाह के पुत्र हैं। बाप ने बड़े चाव-चोचले से पाला है, और जिस दिन से उन्होंने संसार-यात्रा की, महल में गुलबानू के नखरे पहले से भी अधिक होने लगे। अम्मा कहती हैं, निगोड़ी के नन्हे-से हृदय को घोर कष्ट पहुँचा है। अब इसका मन इस प्रकार लिए रहूँ, जिससे उनके प्रेम को यह भूल जाय।

इधर दादा अर्थात् बहादुरशाह की यह गति है कि नातिन के लाड़ में किसी बात की कमी नहीं करते। नवाब ज़ीनतमहल उनकी प्यारी बेगम हैं। जवाँबख़्त इन्हीं के पेट का राजकुमार है। यद्यपि मिर्ज़ा दाराबख़्त की असामयिक मृत्यु से उत्तराधिकारी का पद मिर्ज़ा फ़ख़र को मिला है, तो भी जवाँबख़्त के प्रेम के सम्मुख उत्तराधिकारी की कोई गिनती नहीं, और ज़ीनतमहल अँगरेज़ी कर्मचारियों से भीतर-ही-भीतर जवाँबख़्त को उत्तराधिकारी बनाने की साज़िश कर रही हैं। जवाँबख़्त का इस धूम से विवाह होता है कि मुग़लों के अंतिम दिनों में इसकी टक्कर का कोई दृष्टांत नहीं मिलता। 'ग़ालिब' और 'ज़ौक़' सेहरा लिखते हैं, और उनमें विख्यात कविता की वह झलक है, जिसका वर्णन शमशुलउल्मा 'आज़ाद' देहलवी ने 'आबे हयात' में किया है। यह सब कुछ था, और जवाँबख़्त और ज़ीनतमहल के आगे किसी का चिराग़ न जलता था।

परंतु गुलबानू की बात सबसे निराली थी। बहादुरशाह का इस लड़की से जो संबंध था और जैसा सच्चा प्रेम इस लड़की से रखते थे, वैसा प्रेम, बादशाह की ओर से, ज़ीनतमहल और जवाँबख़्त को भी नसीब न था। बस, इसी से प्रकट होता है कि गुलबानू किस ठाट-बाट और नाज़-नख़रों से अपना जीवन बिताती होगी। होने को मिर्ज़ा दाराबख़्त के और भी बाल-बच्चे थे, परंतु गुलबानू और उसकी माँ से उनको प्रेम था। गुलबानू की माँ एक डोमनी थी, और मिर्ज़ा उसको अन्य रानियों से अधिक चाहते थे। जब वह मरे, तो गुलबानू बारह साल की थी। मिर्ज़ा नसीरुद्दीन चिराग़ दिल्ली की दरगाह में गाड़े गए थे, जो दिल्ली से छः मील की दूरी पर पुरानी दिल्ली के खँडहरों में है। गुलबानू प्रत्येक महीने माँ को लेकर बाप की क़ब्र देखने जाती थी। जब जाती, तो क़ब्र को लिपटकर रोती, और कहती—"पिताजी! हमको भी अपने पास लिटाकर सुला लो। हमारा जी तुम्हारे बिना घबराता है।"

जब गुलबानू ने पंद्रहवें वर्ष में पैर रक्खा, तो युवावस्था ने बचपन का हठ और नटखटी तो दूर कर दी, परंतु हँसी-ठट्ठा इतना बढ़ गया कि महल का बच्चा-बच्चा उससे घबराता था। सोने के छपरखट में दुशाला ताने सोया करती थी। सायंकाल का दीपक जला और बानू छपरखट पर पहुँची। माँ कहती थी—"दीपक में बत्ती पड़ी लाडो पलँग चढ़ी।" यह सुनकर वह मुसकिराकर अँगड़ाई और जँभाई लेकर सिर के बिखरे हुए बालों को माथे से समेटकर कहती—"अच्छा अम्मा! तुमको क्या? सोने में समय नष्ट करते हैं, तो तुम्हारा क्या लेते हैं? तुम वृथा ही क्यों कुढ़ती हो?" माँ कहती—"ना बिन्नो! मैं कुढ़ती नहीं। आनंद से चैन करो। परमात्मा तुमको सर्वदा सुख की नींद सुलावे। मेरा तात्पर्य तो यह है कि अधिक सोना आदमी को बीमार कर देता है। तुम सायंकाल

को सोती हो, तो प्रातःकाल तनिक जल्दी उठा करो। परंतु तुम्हारी तो यह दशा है कि दस बज जाते हैं, सारे घर में धूप फैल जाती है, लौंडियाँ भय के मारे बात तक नहीं कर सकतीं कि कहीं बानू की आँख खुल जायगी। ऐसा भी क्या सोना! कुछ घर का प्रबंध भी देखना चाहिए। अब तुम जवान हो गईं। पराए घर जाना है। यदि यही स्वभाव रहा, तो वहाँ कैसी बीतेगी?" गुलबानू माँ की ऐसी बातें सुनकर बिगड़ती और कहती—"तुमको इन बातों के सिवा और भी कुछ कहना आता है। हमसे न बोला करो। तुम्हें हमारा रहना कठिन हो गया हो, तो स्पष्ट रूप से कह दो। दादाजी (बहादुरशाह) के पास जा रहेंगे।"

प्रेम-पाठशाला

उसी समय की बात है कि खिज़्र सुल्तान का पुत्र मिर्ज़ा दाविर-शिकोह गुलबानू के पास आने-जाने लगा। क़िले में पारस्परिक पर्दा नहीं होता था अर्थात् शाही कुटुंब के आपस में पर्दा न करते थे। इसीलिये, मिर्ज़ा दाविर का आना-जाना बेरोक-टोक था। प्रथम तो गुलबानू इनकी बहन और वह इनके भाई थे। चाचा-ताऊ के दो बच्चे समझे जाते थे। परंतु कुछ दिन पश्चात् प्रेम ने एक दूसरा ही संबंध उत्पन्न किया। मिर्ज़ा गुलबानू को कुछ और समझते थे और गुलबानू दाविर को प्रकट संबंध के अतिरिक्त किसी और संबंध की दृष्टि से देखती थी। एक दिन प्रातःकाल के समय मिर्ज़ा गुलबानू के पास आए, तो देखा, बानू श्याम दुशाला ओढ़े सुनहरी छपरखट में श्वेत पुष्प-युक्त सेज पर पाँव फैलाए बेसुध सोई पड़ी है। मुँह खुला हुआ है। अपने ही हाथ पर सिर रक्खा है। तकिया अलग पड़ा है। दो दासियाँ मक्खियाँ उड़ा रही हैं। दाविरशिकोह चाची के पास बैठकर बातें करने लगे। पर किस विचित्र चितवन से अपने प्रेम-पुष्प को निद्रावस्था में देख रहे थे! अंत में न रहा गया, और

बोले—"क्यों चाची, बानू इतने दिन चढ़े तक सोती रहती है? धूप इतनी निकल आई। अब तो इनको जगा देना चाहिए।" चाची ने कहा—"बेटा, बानू के स्वभाव को जानते हो। किसकी शामत आई है, जो इसको जगा दे? बस, प्रलय ही हो जायगा।" दाविर ने कहा—"देखिए, मैं जगाता हूँ। देखूँ, क्या करती हैं।" चाची ने हँसकर कहा—"जगा दो, तुमसे क्या कहेगी? तुम्हारा तो बहुत ख़याल करती हैं।" दाविर ने जाकर तलवे में गुदगुदी की। बानू ने अँगड़ाई लेकर पैर समेट लिया, और आँखें खोलकर वक्र दृष्टि से पैर की ओर देखा। ख़याल था कि किसी दासी की नटखटी है। उसको उसके लिये दंड देना चाहिए। परंतु जब उसने एक ऐसे व्यक्ति को खड़ा पाया, जिसको वह अपना हृदय दे चुकी थी, तो लज्जा से दुशाले का आँचल मुँह पर डाल लिया और घबराकर उठ बैठी। दाविर ने बानू का हड़बड़ाना देखकर कहा—"लो चाची, मैंने बानू को उठा दिया।"

प्रेम-पाठ की वर्णमाला समाप्त हो चुकी थी। दोनों प्रेम-पाश में बंदी थे। विरह और प्रेम की कविता होने लगी, तो गुलबानू की माँ को संदेह हुआ। और उसने दाविरशिकोह का आना अपने घर में बंद किया।

ग़दर के नौ महीने पश्चात्

चिराग़अली की दरगाह के एक कोने में एक युवती फटा हुआ कंबल ओढ़े रात्रि के समय हाय-हाय कर रही थी। शीतकाल का मेंह मूसलाधार गिर रहा था। हुंकारती हुई हवा के झोंको से बौछार उस स्थान को भिगो रही थी, जहाँ उस स्त्री का बिछौना था। वह बहुत बीमार थी। पसली में पीड़ा थी। ज्वर और दीनता में अकेली पड़ी तड़पती थी। ज्वर की बेहोशी में उसने बुलाया—"गुलबदन! अरी, ओ गुलबदन! मर गई क्या, जल्दी आ, और मुझको दुशाला

उठा दे ! देख बौछार भीतर आती है। पर्दा गिरा दे ! रोशन, तू ही आ। गुलबदन तो कहीं मर गई। मेरे पास कोलों की अँगीठी ला। पसली पर तेल मल। पीड़ा से मेरा दम निकला जाता है।"

जब उसके बुलाने पर कोई न आया, तो उसने फटा कंबल अपने बदन से हटाया और चारों ओर देखा। अँधेरे दालान में धूल के बिछौने पर अकेली पड़ी थी। चारों ओर अँधेराघुप छाया हुआ था। मेंह सन्नाटे से पड़ रहा था। बिजली चमकती थी, तो एक सफ़ेद कब्र की झलक दिखाई देती थी। वह क़ब्र उसके पिता की थी। यह दशा देखकर वह चिल्लाई और कहा—"बाबा! बाबाजी! मैं तुम्हारी गुलबानू हूँ। देखो अकेली हूँ। उठो, मुझे ज्वर चढ़ रहा है। आह! मेरी पसली में भयंकर पीड़ा है। मुझे ठंड लग रही है। मेरे पास इस फटे कंबल के सिवा और कुछ नहीं है। मेरी अम्मा मुझसे बिगड़ गई। महलों से मैं निर्वासित की गई। बाबाजी! मुझे अपनी कब्र में बुला लो। अजी! मुझे डर लगता है। कफ़न से मुँह उघारो, और मुझको देखो। मैंने परसों से कुछ नहीं खाया। मेरे शरीर में इस गीली धरती के कंकर चुभते हैं। मैं ईंट पर सिर रक्खे लेटी हूँ। मेरी शय्या क्या हुई? मेरा दुशाला कहाँ गया? मेरी सेज किधर गई? अब्बाजी! बाबाजी! उठो! कब तक सोओगे। आह पीड़ा! उफ़! मैं साँस कैसे लूँ?" यह कहते-कहते वह अचेत हो गई। उसने देखा कि वह मर गई है और उसके पिता मिर्ज़ा दाराबख़्त उसको क़ब्र में उतार रहे हैं। रो-रोकर कह रहे हैं—"यह इस बेचारी का धूल का छपरखट है।"

आँख खुल गई और बेचारी बानू एड़ियाँ रगड़ने लगी। अंतिम समय आ गया, और वह कहती थी—"लो साहब, मैं मरती हूँ। कौन मेरे गले में शरबत डालेगा? किसकी जंघा पर मेरा सिर रक्खा जायगा? परमात्मा, तेरे सिवा मेरा और कोई नहीं है। तुही

दीनों का रक्षक है, प्रतिपालक है। तुही मेरा साथी है। तुही मेरा रक्षक है। अब मैं तेरे ही दरबार में आती हूँ। लो अब मैं च... ।" राजकुमारी के प्राण-पखेरू उड़ गए, और अगले दिन से उसने मिट्टी ही ओढ़ी, मिट्टी ही का बिछौना और सिराहना किया और वही उसकी वास्तविक शय्या थी, जिस पर वह प्रलय-काल तक सोती रहेगी।

तेरहवाँ अध्याय

ग़दर की जड़ भ्रम

ख़ानम का बाज़ार दिल्ली में एक प्रसिद्ध स्थान था, जो क़िले के सम्मुख बसा हुआ था, और जिसमे बड़े-बड़े प्रवीण कारीगर रहते थे। ग़दर के पश्चात् वह मुहल्ला उजड़ गया, और वहाँ अब मैदान है। एप्रिल, सन् १८५७ ई० की बात है कि एक दिन सायंकाल के समय मुहम्मद यूसुफ़ लालडिग्गी पर घूमने को गया। वहाँ उसको एक हिंदू जौहरी का नौकर मिला, और उसने कहा—"हमारे लाला को मंदिर के लिये सोने का कलश बनवाना है। उन्होंने तुमको बुलवाया है। चलकर काम का अंदाज़ा कर लो। मुहम्मद यूसुफ़ एक प्रसिद्ध चाँदीवाले कारीगर का लड़का था। मुख्य बाज़ार और ख़ानम के बाज़ार में जितने चाँदीवाले रहते थे, वे लाहौरियों के नाम से प्रसिद्ध थे, और अब भी उनको लाहौरी कहा जाता है। ये लोग चाँदी के बर्तन और सोने के गहने बनाते थे। अस्त्र-शस्त्र बनाने का पेशा भी इन्हीं लोगों के हाथ में था। मुहम्मद यूसुफ़ का बाप चाँदी-सोने के बर्तन बनाता था, और सबका शिरोमणि माना जाता था। मुहम्मद यूसुफ़ को मुलम्मा करने का काम सिखाया जाता था। जौहरी के नौकर ने सोने के कलश का नाम लिया, तो यूसुफ़ उसके साथ चलने को उद्यत हुआ। परंतु उसने कहा कि नमाज़ पढ़कर चलूँगा। नौकर इस पर राज़ी हो गया। यूसुफ़ ने एक मसजिद में जाकर नमाज़ पढ़ी, और बाहर आकर नौकर के साथ हो लिया। नौकर उसको मालीवाड़े में ले गया, जहाँ हिंदू जौहरी रहते थे। यूसुफ़ प्रायः इस मुहल्ले में काम लेने-देने के लिये आया-जाया करता

था। एक गली में जाकर नौकर ने कहा—"तुम थोड़ी देर यहाँ ठहरो। मैं अभी आता हूँ।" यूसुफ़ खड़ा हो गया। इतने में चार आदमी एक घर से निकलकर आए। वे लंबे-तड़ंगे और हृष्ट-पुष्ट थे। वह नौकर भी उनके साथ था। उन हट्टे-कट्टे आदमियों ने कहा—"आइए, इस घर में चलिए, जिससे हम आपको काम दिखा दें।" यूसुफ़ को पहले तो संदेह हुआ कि वे जौहरी नहीं हैं। परंतु अपना हृदय कड़ा करके उसने भय और संदेह को दूर कर दिया, और सीधा उनके घर में चला गया। वहाँ एक मौलवी साहब बैठे थे, जिन्होंने यूसुफ़ को देखते ही प्रणाम किया। यूसुफ़ बिछौने पर बैठ गया। मौलवी साहब ने कहा—"मियाँ! तुमको हमने एक बहाने से बुलाया है। मंदिर का कलश बनवाना हमारा उद्देश नहीं, वरन् कुछ और काम है। मैं इस नगर का रहनेवाला भी नहीं हूँ, और ये चारों व्यक्ति भी परदेशी हैं। हम सब एक हिंदू जौहरी के अतिथि हैं, जिसने हमें तुम्हारा पता दिया है। हमने सुना है कि तुम्हारे चचा अस्त्र-शस्त्र बनाने में प्रवीण हैं, और दिल्ली के मेगज़ीन में उनका आना-जाना है। वहाँ सबका समाचार उनको ज्ञात है। पहले हमारा विचार था कि उन्हीं को बुलावें; परंतु फिर ज्ञात हुआ कि वह बड़े ही डरपोक आदमी हैं। इसलिये हमने तुमको बुलाना उचित समझा; क्योंकि तुम बड़े साहसी हो। जौहरी साहब के लड़के से आठ दिन पूर्व जो बातें तुमने की थीं, उनसे ज्ञात हुआ कि तुम्हारे हृदय में अपने धर्म के लिये स्थान है, और काफ़िर फ़िरंगियों के शासन से तुम अप्रसन्न हो। इसलिये यह क़ुरान शरीफ़ तुम्हारे सामने रखता हूँ। इस पर हाथ रखकर शपथ खाओ कि हमारा भेद किसी से न कहोगे, और जो काम तुमसे कहा जाय, उसको पूरा करोगे।" यूसुफ़ ने कहा—"मैं शपथ लेने से डरता हूँ। शपथ लेना भारी काम है। इससे तो क्षमा कीजिए। हाँ, यह प्रण करता हूँ कि

आपका कार्य धार्मिक होगा, तो तन-मन-धन से सहायता करूँगा।" यह उत्तर सुनकर उन चारों मनुष्यों ने तलवारें सूत लीं, और कहा—"शपथ न लोगे, तो फिर तुम्हारी ख़ैर नहीं। हम अभी वध कर डालेंगे।" मौलवी साहब ने उनको रोका, और बड़ी नम्रता से

समझाने लगे। यूसुफ़ कुछ तो डरा, और कुछ इस पर मौलवी साहब की बातों का प्रभाव पड़ा। तत्काल ही उसने क़ुरान शरीफ़ को उठाकर सिर पर रक्खा, और बोला—"मैं प्रत्येक धार्मिक कार्य के लिये, जो आप बतावें, तैयार हूँ, चाहे उसमें मेरी जान ही जाय।"

मौलवी साहब ने यूसुफ़ को छाती से लगा लिया और कहा—"हमारा बस इतना काम है, किसी-न-किसी प्रकार सेगज़ीन के

अफ़सर तक पहुँचो, और इसकी गोप्य लिखा-पढ़ी को प्राप्त करो; क्योंकि हमको ज्ञान हुआ है कि अँगरेज़ों ने भारतवासियों के धर्म को भ्रष्ट करने का विचार किया है। सुअर और गाय की चर्बी से कारतूस चिकने किए हैं, जिससे कि जब सैनिक उनको दाँत से काटें, तो हिंदू-मुसलमान, दोनों का ईमान जाता रहे। यदि यह बात ठीक है, तो मेगज़ीन के अफ़सर के पास इस विषय की लिखा-पढ़ी अवश्य होगी। हम केवल प्रमाण चाहते हैं, जिससे कि हमारा वह कार्य, जिसको हम करें, प्रभु की दृष्टि में औचित्यपूर्ण हो। ये चारो आदमी हिंदू और एक सेना के कर्मचारी हैं। मुझको एक दूसरी सेना के मुसलमान कर्मचारियों ने इस कार्य के लिये नियत किया है।" यूसुफ़ ने कहा—"एक घरेलू कारण से मैं चचा के घर में नहीं जाता। फिर इस दशा में मेगज़ीन तक मेरी पहुँच कैसे होगी ?" मौलवी साहब मुस्किराकर बोले—"हाँ, मुझे ज्ञात है कि तुम्हारी मँगनी तुम्हारे चचा की लड़की से हुई है, और इसी कारण तुम उनके घर में नहीं जाते। पर इस कार्य के लिये घर जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम चचा से मेल-जोल करके उनके साथ मेगज़ीन जाना शुरू कर दो, और येन केनप्रकारेण उस लिखा-पढ़ी को हथिया लो।" यूसुफ़ ने कहा—"यदि ऐसा किया भी जाय, तो मेगज़ीन की गोप्य लिखा-पढ़ी और काग़ज़ों तक पहुँचना कठिन है। गोरे लोग काग़ज़ों को बाहर थोड़े ही डाले रखते हैं।" मौलवी साहब बोले—"तुम अभी से अगर-मगर न करो। जाओ तो सही। परमात्मा सहायता देगा, और हम भी तुमको ढंग बताते रहेंगे।" यूसुफ़ "बहुत अच्छा" कहकर घर चला आया, और अपने प्रण को पूरा करने के लिये उपाय सोचने लगा।

मेगज़ीन का दरबान

रहीमबख़्श-नामक एक व्यक्ति मेगज़ीन का एक दरबान था।
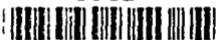
वह मेगज़ीन के अफ़सर के घरेलू काम-काज भी बहुत किया करता था। यूसुफ़ जब अपने चचा के साथ मेगज़ीन में आने-जाने लगा, तो तीसरे दिन रहीमबख़्श ने चुपके से उसको अलग बुलाया, और कहा—"तुम जिसकी खोज में हो, उसमें मेरी सहायता बड़ी आवश्यक है। मौलवी साहब ने मुझसे भी शपथ ली है। परंतु मैं स्वयं कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि साहब को मुझ पर संदेह हो गया है। मैं तुम्हें यह बता सकता हूँ कि तोपोंवाले कोठे के बराबर जो कमरा है, उसमें साहब के बक्स रक्खे हैं, और काग़ज़ उसी में रहते हैं। परसों साहब ने तोपें साफ़ करने की आज्ञा दी है। तुम्हारे चचा कारीगर लेकर आवेंगे। तुम भी आना, और पीछे के द्वार का ताला किसी प्रकार खोलकर कमरे में घुस जाना।" यूसुफ़ यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ; क्योंकि उसको अपने धर्म की सेवा के लिये मार्ग मिल गया। दूसरे दिन वह अपने चचा के साथ आया, और भयंकर तोपों की काई साफ़ करने लगा। उसी दशा में उसने कमरे का द्वार देखा, जिसमें एक भारी ताला पड़ा हुआ था। दोपहर को सब कारीगर खाना खाने के लिये मेगज़ीन से बाहर गए; परंतु यूसुफ़ वहीं ठहरा रहा। पहरे पर एक हिंदू संतरी उपस्थित था। रहीमबख़्श दरबान ने अवसर पाकर संतरी से कहा—"तेरे घर से अभी आदमी आया था, और कहता था कि तेरी स्त्री कोठे से गिर पड़ी है। तू जल्दी वहाँ जा। मैं यहाँ हूँ। तेरे बदले के सिपाही को अभी बुला लूँगा।" संतरी यह सुनकर शीघ्र ही चला गया। यूसुफ़ ने फुर्ती से कारीगरों के सफ़ाई के हथियारों से ताला खोल लिया, और कमरे में जाकर संदूक़ खोलना चाहा। परंतु उसमें भी ताला पड़ा हुआ था। उसको बहुतेरा खोला; पर वह न खुला। अंत में उसने ताला तोड़ दिया, और संदूक़ को खोला; पर उसमें कुछ भी न था। यूसुफ़ ने जल्दी में ताला तोड़कर दूसरे

संदूक़ को खोला। उसमें इतने काग़ज़ थे कि वे अकेले यूसुफ़ से न चल सकते थे। यूसुफ़ कुछ देर तक सोचता रहा। अंत में उसने सोच-विचारकर लिफ़ाफ़ों को ले लिया, उनको रूमाल में बाँधकर बाहर आया, और फिर ताले लगा दिए।

जब कारीगर काम पर आ गए, तो यूसुफ़ मेगज़ीन से निकलकर सीधा मालीवाड़े गया, और मौलवी साहब को वे सब काग़ज़ दे दिए। मौलवी साहब ने शीघ्र ही एक ऐसे व्यक्ति को बुलाया, जो अँगरेज़ी पढ़ा हुआ था। उसने उन काग़ज़ों को पढ़ा, तो उनमें कारतूसों के विषय में कुछ न निकला। केवल एक लिफ़ाफ़े में, जो मेरठ से आया था, यह अवश्य लिखा निकला कि नए कारतूसों के विषय में दिल्ली के सैनिकों में क्या चर्चा है? मौलवी साहब ने कहा—"बस, ज्ञात हो गया। दाल में कुछ काला अवश्य है, तभी तो पूछा गया है।" यूसुफ़ ने कहा—"मियाँ, अभी तुम बच्चे हो। कूटनीति को नहीं समझते।" यह कहकर उन्होंने शीघ्र ही यात्रा की तैयारी की, और यूसुफ़ की प्रशंसा करते हुए दिल्ली से कहीं चले गए।

ग़दर प्रारंभ हो गया

होते-होते ११ मई आ गई, और मेरठ की विद्रोही सेना ने दिल्ली में आकर ग़दर मचा दिया। अँगरेज़ों की हत्या हो रही थी। कोठियों और बँगलों में आग लग रही थी। चारों ओर कोलाहल और लूट-मार का साम्राज्य था। यूसुफ़ भी अपने घर से निकलकर क़िले के नीचे आया, तो वहाँ उसने एक सवार को पहचाना, जो उन्हीं चार आदमियों में से था, जो मालीवाड़े में मिले थे। सवार ने कहा—"आओ यूसुफ़, तुमसे एक काम है। हम मेगज़ीन पर अधिकार करना चाहते हैं। चलो, हमारे साथ चलो, और सैर करो।" यूसुफ़ ने कहा—"मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा! मैं सिपाही नहीं हूँ, और न मेरे पास हथियार ही हैं।" परंतु सवार ने उसे

चलने को बाध्य किया, और कहा—"वहाँ लड़ाई न होगी। अँगरेज़ सब मार डिए गए, या भाग गए हैं, और देशी सेना सब हमारे साथ हो गई है।" यूसुफ़ यह सुनकर सवार के साथ कश्मीरी दरवाज़े तक गया। जब वे मेगज़ीन पर पहुँचे, तो उसका दरवाज़ा बंद था, और विद्रोही सेना उसको घेरे हुए खड़ी थी। थोड़ी देर में दरवाज़े की खिड़की से उसी रहीमबख़्श दरबान ने झाँका और कहा—"क़िले से सीढ़ी ले आओ, और ऊपर चढ़कर भीतर आओ। यहाँ केवल दो-चार गोरे हैं।" यूसुफ़ ने रहीमबख़्श के पास जाकर कहा—"कलवाली बात तो अभी प्रकट नहीं हुई?" रहीमबख़्श ने कहा—"मुझे शराबियों को अभी कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ।"

सिपाही सीढ़ी लेने चले गए, और यूसुफ़ अपने घर लौट आया। थोड़ी देर में एक भयंकर धड़ाका हुआ, जिससे शहर का कोना-कोना कंपित हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो पृथ्वी फट गई और सब उसमें धँस गए। वह शब्द मेगज़ीन उड़ने का था। दिल्ली में गोले और गोलियों की वह वृष्टि रही कि हज़ारों आदमी मारे गए, और हज़ारों ही घायल हुए। घंटों धुआँ छाया रहा, और घायलों का आर्तनाद सुनाई पड़ता रहा।

दिल्ली विजय हो गई

अँगरेज़ों ने आपत्ति के कुछ दिन काटकर दुबारा प्रभुत्व प्राप्त किया। जिस समय दिल्ली पर गोलाबारी हो रही थी, और शहर के सब निवासी भाग रहे थे, उस समय यूसुफ़ के चचा ने यूसुफ़ के बाप से कहा—"लक्षण बुरे हैं। अच्छा हो, यूसुफ़ का विवाह कर दिया जाय, जिससे जिस समय हम दिल्ली से निकलें, तो पर्दे का झंझट न रहे।" यूसुफ़ के बाप ने इस बात को मान लिया, और यूसुफ़ का विवाह हो गया। विवाह होते ही समाचार मिला कि अँगरेज़ी सेना दिल्ली में घुस आई, और बादशाह क़िले से निकल-

कर हुमाऊँ के मक़बिरे में चले गए। यूसुफ़ के माता-पिता और अन्य कुटुंबी भी रथों में बैठकर भागे, और सीधे क़ुतुब आए। यूसुफ़ ने उस वक्त तक दुलहिन का मुख न देखा था। क़ुतुब में जहाँ वे ठहरे, वह स्थान बहुत ही बुरा था, और सब लोगों के लिये अपर्याप्त था। रीति के अनुसार उस आपत्ति-काल में भी दुलहिन ने लज्जा के कारण अपना सिर ऊपर तक न किया। आधीरात के समय जब ये लोग सो रहे थे, अँगरेज़ी सैनिकों ने उनको घेर लिया, और यूसुफ़ की खोज करने लगे। जब सब लोग जागे, सैनिकों ने पुरुषों को गिरफ़्तार कर लिया, और नाम पूछकर यूसुफ़, उसके बाप और उसके चचा को साथ ले गए, और शेष आदमियों को छोड़ दिया। जिस समय यूसुफ़ पृथक् होने लगा, तो उसकी माँ विह्वल हो गई, और रो-रोकर उसने कहा—"यह मेरी बीस वर्ष की कमाई है। यह मेरा इकलौता पुत्र है। इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। कल इसका विवाह हुआ है। इसने तो अभी अपनी दुलहिन को देखा तक नहीं। तुम इसे कहाँ लिए जाते हो और क्यों लिए जाते हो?" एक सवार ने उत्तर दिया—"यह बड़ा बाग़ी अभियुक्त है। इसको फाँसी दी जायगी। तुम इससे अंतिम बार मिल लो। लौटकर तुम्हारे पास यह अब न आवेगा।" यह सुनकर यूसुफ़ की माँ ने एक चीख़ मारी, और बेहोश होकर गिर पड़ी। यूसुफ़ की नवविवाहिता वधू अभी तक घूँघट निकाले लज्जा के मारे बैठी थी। परंतु सवार की बात सुनकर उसने घूँघट उठा दिया, और दोनों हाथ मलती हुई खड़ी हो गई। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उसके काँपते हुए सुंदर ओठों से दुःख टपक रहा था। उसने मुँह से तो कुछ न कहा, केवल करुणा की दृष्टि से यूसुफ़ को देखा, और टकटकी बाँधकर बराबर देखती रही। यूसुफ़ पुरुष था। परंतु वह भी उस दृश्य को देखकर बेसुध हो गया, और निराशा की दृष्टि से अपनी दुलहिन को देखने

लगा। वह भी चुप था। दुलहिन भी चुप थी। दुलहिन की आँखों का सुरमा आँसुओं के साथ बह-बहकर गुलाबी कपोलों पर धब्बा लगाता था, और यूसुफ़ का मुख भी निराशा के कारण पीला पड़ गया था।

यूसुफ़, उसके चचा और बाप के हाथ रस्सी से बाँध दिए गए, और सवार उनको लेकर चलने लगे, तो यूसुफ़ की दुलहिन ने बहुत धीरे स्वर से कहा—"जाओ, मैं महर को क्षमा करती हूँ।"

फाँसी का समय

जाँच करने से ज्ञात हुआ कि यूसुफ़ और उसका चचा मेगज़ीन-षड्यंत्र के दोषी हैं, और यूसुफ़ का पिता निर्दोष। इसलिये वह तो मुक्त कर दिया गया, और शेष दोनों को फाँसी की आज्ञा हुई।

जेलख़ाने में जहाँ ये सब अभियुक्त बंद थे, यूसुफ़ ने उन मौलवी साहब को भी देखा, जो मालीवाड़े में मिले थे। उन्होंने यूसुफ़ को धैर्य बँधाया, और कहा—"उन चार सवारों में से एक ने हम सबकी मुख़बिरी की है।" यूसुफ़ ने कहा—"आप कहाँ चले गए थे?" उन्होंने कहा—"मैं मेरठ जाकर फिर दिल्ली आ गया था। मुख़बिर ने सब बातें अफ़सर को बता दीं। रहीमबख़्श दरबान तो मेगज़ीन के साथ उड़ गया, और मैं यहीं पकड़ा गया।"

यूसुफ़ के चचा ने अपनी कष्ट-कथा और अपनी लड़की के विवाह का समाचार मौलवी साहब से कहा, तो वह बोले—"निस्संदेह बड़े दुःख की बात है। पर हमने धर्म की दृष्टि से सब कुछ किया था; क्योंकि हमको विश्वास हो गया था कि अँगरेज़ हमको क्रस्तान बनाना चाहते हैं। अब ज्ञात हुआ कि इस विषय में जनश्रुतियाँ उड़ाई गई थीं। पर हमारी नियत अच्छी थी, और हमने स्वधर्म-प्रेम में यह सब कुछ किया था। इसलिये परमात्मा हमको क्षमा करेगा और हम शहीदों की मौत मरेंगे।"

यूसुफ़ ने कहा—"आप तो काग़ज़ देखकर कहते थे कि इसमें गोरों की कूटनीति है, और अब आप उनको निर्दोष बताते हैं।" मौलवी साहब ने कहा—"उस समय मेरी यही धारणा थी। परंतु, मेरठ जाकर जब काग़ज़ और अन्य समाचारों पर विचार किया, तो मैंने सैनिक अफ़सरों से कह दिया था कि अँगरेज़ों की कुचेष्टा का कोई प्रमाण नहीं है। पर वे न माने, और उत्पात कर दिया।"

प्रातःकाल सब लोग फाँसी-घर के सामने लाए गए। पहले मौलवी साहब को लटकाया गया और उन्होंने उच्च स्वर से कहा—"ख़बरदार! कोई आदमी साहस न छोड़े। हम सब भूल के शिकार हैं। परमात्मा हमको क्षमा करेगा।" बस, शीघ्र ही तख़्ता खिंचा, और मौलवी साहब के साहस के शब्दों के अतिरिक्त और कुछ न रहा। उनके पश्चात् यूसुफ़ और उसके चचा को फाँसी हो गई।

चौदहवाँ अध्याय

राजकुमार का झाड़ू देना

संसार-चक्र बड़ा विचित्र है। आज जो सम्राट् है, कल न-जाने उस पर क्या बीते। आज जो हाथी पर घूमने जाते हैं, कल न-जाने उनकी क्या गति हो। ऐतिहासिक घटनाएँ और समय सम्राटों के मुकुट को धूल में मिला देता है। सन् १९१४ ई० में जर्मनी ने युद्ध-भेरी के नाद से दिग्विजय की घोषणा की थी; पर सन् १९१८ ई० में वही जर्मनी पंगु हो गया और उसके पर काट दिए गए। रूस के ज़ार का संपूर्ण घराना—दुधपिए बच्चे तक—एक पेड़ से बाँधकर मार डाला गया। ज़ार के शताब्दियों के अत्याचार का वह प्रायश्चित्त हो सकता है। मुग़ल-वंश की विभूति, अकबर के ऐक्य-सिद्धांत, शाहजहाँ की कीर्ति और मुग़लों की तलवार, कारण और फल के अटल सिद्धांत के कारण, विलीयमान हो गई। जो राष्ट्र उद्देश और उपाय का विचार नहीं करते, जो विलासिता, संकीर्णता और प्रजावर्ग पर के अत्याचार के दलदल में फँस जाते हैं, संसार में उनका नाम तक नहीं रहता।

सन् १९१७ ई० की बात है, ख़्वाजा हसन निज़ामी अपने प्रिय मित्र मुल्ला मुहम्मद वाहिदी संपादक 'ख़तीब' के पास बैठे थे। सामने ही एक फ़राश झाड़ू लगा रहा था, और फूलों के गमलों को भी साफ़ करके बड़े ढंग से रख रहा था। इतने ही में वाहिदी साहब ने कहा—"महमूद फ़राश?" "हाज़िर हुआ" कहकर वह दौड़ा हुआ आया, हाथ बाँधकर सामने खड़ा हो गया और आज्ञा पाकर शीघ्र बाहर चला गया। उसकी फुर्ती, शिष्टाचार और सभ्यता ने

ख़्वाजा साहब के ध्यान को बड़ा ही आकर्षित किया। वह मन-ही-मन कहने लगे कि ऐसे सौम्य और सभ्य नौकर बहुत ही कम होते होंगे। वाहिदी साहब से पूछने पर ज्ञात हुआ कि महमूद फ़र्राश मुग़ल-वंशीय राजकुमार है और दिल्ली के सम्राटों का बड़ा ही निकट संबंधी है।

फ़र्राश मिर्ज़ा महमूद के पुरखों पर—बाबर और हुमाऊँ पर—बड़े कड़े समय पड़े थे। पर उनकी आशा का तार न टूटा था। वे अपने घोर संकट-काल में, जब वे दो-दो दानों को तरसे, विचार करते थे कि एक-न-एक दिन वे सम्राट् अवश्य होंगे। पर बेचारे मिर्ज़ा महमूद फ़र्राश को वह ख़याल और आशा स्वप्न में भी नहीं हो सकती और न प्रलय-काल तक वह अपने भाग्योदय का ही स्वप्न देख सकता है। आज दिन ज़ार के निकटतम संबंधी, वे राज-कुमारियाँ, जो नाज़-नख़रों में पली थीं, जो अपने शृंगार पर करोड़ों रुपए व्यय करती थीं, आज वे ही कोमलांगी दो-दो टुकड़ों के लिये भटकती हैं, और पापी पेट की ख़ातिर होटलों और नाटकों की परिचारिकाएँ बनी हुई हैं। ये घटनाएँ बड़ी ही उपदेशप्रद हैं।

मिर्ज़ा महमूद फ़र्राश का पुराना घर 'ख़तीब'-कार्यालय से सौ क़दम की दूरी पर, लाल क़िले में था, जहाँ पर रत्न-जटित स्नानागार और टट्टियाँ थीं, जहाँ दास-दासी करबद्ध खड़े रहते थे। इसी मिर्ज़ा महमूद फ़र्राश के पुरखे भारत-सम्राट् थे, जिनके सम्मुख बड़े-बड़े राजा और नवाब हाथ बाँधे खड़े रहते थे। राजकुमार मिर्ज़ा महमूद आजकल ऐसे घर में रहता है, जहाँ इसके बड़ों का एक कमीन-से-कमीन दास भी रहना पसंद न करता। न पक्की दीवार है न पक्की छत, और न पक्का आँगन ही। कच्ची मिट्टी की दीवारें हैं। गंदा कमरा है। दीवारों में दरारें हैं, रात को जहाँ चूहे कबड्डी खेलते हैं, जहाँ पर बरसात में टपके के कारण एक गज़ जगह भी

सुरक्षित नहीं है। राजकुमार महमूद को आज वह खाना मिलता है, जो उसके पुरखों के नौकरों ने कभी आँख से नहीं देखा था। वह सूखे टिक्कड़ चटनी से खा लेता है। वह उबाली दाल से पेट भर लेता है, और उसके न मिलने पर अपने बच्चों को धैर्य बँधाकर भूखा पड़कर सो जाता है। राजकुमार महमूद के पास राजसी वस्त्र नहीं हैं। उसके और उसके बच्चों के फटे कपड़े हैं। शीतकाल में वे फटी हुई गुदड़ियों और कम्बलों के चिथड़ों में रात काटते हैं। आज गवर्नमेंट-हाउस में भारत के शासक आग की अँगीठियों के समीप कुर्सियों पर लेटे बातें कर रहे हैं। ठीक आज ही के दिन राजकुमार महमूद और उसकी भाँति अन्य राजकुमार टूटे-फूटे घरों में गीली और ठंडी धूल पर बोरिया बिछाए और फटी हुई रज़ाइयाँ ओढ़े भूखे-प्यासे पड़े एड़ियाँ रगड़ते हैं। इस बात को बहुत दिन नहीं हुए। केवल साठ वर्ष बीते हैं कि इसी दिल्ली में लाल क़िला आबाद था, और उसमें राजकुमार महमूद के पुरखे शाल-दुशाले ओढ़े, सोने-चाँदी की मसहरियों में पाँव फैलाए आनंद से सोते थे, और उनको इस बात का गुमान भी न था कि उनकी संतान एक दिन निर्धन और भिखमंगी हो जायगी। यदि राजकुमार महमूद के बच्चे अपने बड़ों का स्मरण करके अपने पिता से दुशाले मँगवाने और सुनहली मसहरियों में सोने को कहें, तो बेचारा राजकुमार महमूद इसके अतिरिक्त कि वह आँखों में आँसू भर लावे और आकाश को देखकर कलेजा मसोस ले, और क्या उत्तर दे सकेगा? भारत-वासियों को ज्ञात है कि लाल क़िले के राजकुमार बड़े ही ऋतु-पूजक थे। शीतकाल, गर्मी और बरसात में ख़ूब आनंद किया करते थे। प्रत्येक ऋतु में आनंद-प्रमोद की सामग्री रहती थी। दीन-हीन और निराश्रित लोगों को हज़ारों रुपए ख़ैरात में बाँटे जाते थे। पर आज राजकुमार महमूद के बच्चे दो टुकड़ों और कपड़ों को तर-

सते हैं। वे इस बात को पूर्णतया भूल गए हैं कि वे राजकुमार हैं। वे आज अपने को एक फ़र्राश के लड़के समझते हैं, जो दस रुपए मासिक का नौकर है, जो प्रातःकाल अँधेरे ही में नौकरी पर जाता है और रात्रि को अँधेरे में ही लौटता है। तीज-त्यौहार पर राजकुमार महमूद के बच्चे एक पुराने कपड़े-लत्ते के लिये तरसते हैं। रात इंफ़्लयुएंज़ा ज्वरकाल में जब उन बच्चों का कमाऊ पिता ज्वर में पड़ा हुआ हाय-हाय करता था, उसके भोले और छोटे बच्चों ने कई दिन बिना खाए-पिए बिता दिए। छोटे बच्चों ने जब रोटी के लिये

हठ किया, तो बड़ी बहन ने उनको हृदय से लगा लिया, और कहा—"अब्बा अच्छे हो जायँगे, तो आटा लावेंगे। अम्मा रोटी पकावेंगी। हम तुम मिलकर खायँगे।" बच्चे कहते—"अब्बा कब अच्छे होंगे? हमें तो बहुत भूख लगी है।"

बहन कहती—"अब अच्छे हो जायँगे, और बाज़ार जायँगे।" बच्चे रोकर अपनी माँ के पास जाते, और कहते—"अम्मा, रोटी दो।" माँ अपने नन्हे बच्चों को प्यार करती और करुणा-पूर्ण शब्दों में कहती—"बेटा! रोटी कहाँ से लाऊँ? परमात्मा कमानेवाले को बचावे। अभी तो उसी के लाले पड़े हैं। बच्चो! हम दीन हैं। हमारे पास न दवा है, न रोटी है, और न कपड़ा। परमात्मा भला करे हकीम अजमलखाँ का, जिन्होंने ओषधि और भोजन का प्रबंध किया। भोजन का भी प्रबंध हो सकता था। पर हम मुग़ल-वंश के हैं। दान-पुण्य की वस्तु कैसे ले सकते हैं? यही बहुत है कि दान की ओषधि ही ले ली। देखो बेटा! तुम भारत-सम्राट् की संतान हो, और सम्राटों की संतान भीख नहीं माँगा करती। तुम बड़े होकर कभी भीख न माँगना, और अपने अब्बा की भाँति परिश्रम करना।" बच्चों ने रोकर कहा—"अच्छा अम्मा, नहीं माँगेंगे। परंतु तुम तो रोटी दो।" माँ ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने बच्चों को छाती से लगाया, और बड़ी कठिनाई से बहलाया। थोड़े दिनों के बाद राजकुमार महमूद अच्छा हो गया, और एक काम पर लग गया। अपनी नौकरी से वह अपने पेट भरने के लिये यथेष्ट कमा लेता है।

राजकुमार महमूद की जीवनी संसार के शासकों और धन से मदांध लोगों के लिये एक ज्वलंत उपदेश और उदाहरण है। वह उत्थान और शान के घमंड को मन से इस प्रकार निकाल देती है, जैसे धूप से सील और खटाई से नशा, और यही इस राजकुमार की कहानी से उपदेश मिलता है।

पंद्रहवाँ अध्याय

ग़दर की सैयदानी

१० मई, सन् १८५७ ई० की बात है। सैयद-वंश के एक महाशय नूरुलहदी ने प्रातःकाल अपनी स्त्री नक़िया और लड़की ज़किया से गत रात्रि का अपना स्वप्न कहा—"मैंने आकाश-प्रवाहित एक प्रलयकारी अग्नि-कांड देखा, जिससे पशु और मनुष्य जल-जलकर मर रहे हैं। मैंने इसका यह फल निकाला है कि देश में भयंकर मार-काट होनेवाली है।" ज़किया ने कहा—"आपने मार-काट का तात्पर्य कैसे निकाला? दुर्भिक्ष, महामारी और अन्य आपत्तियाँ भी तो इस स्वप्न पर घटती हैं।"

सैयद नूरुलहदी—मुझे जो कुछ ज्ञात है, वह तुम नहीं जानतीं। मैं आज की तारीख़ से पूरे सौ वर्ष तक के समाचार जानता हूँ। मैं अपनी दिव्यदृष्टि से अपना शहीद होना, तेरी स्त्री को) आपत्तियाँ और ज़किया, तेरी कष्ट-कहानी स्पष्ट देख रहा हूँ।

ज़किया यह सुनकर भयभान हो गई। पर शिक्षिता होने के कारण वह चुप होकर बोली—"जब आपको आनेवाली विपत्तियाँ ज्ञात ही हैं, तो आप उनके निवारण के लिये प्रार्थना क्यों नहीं करते?"

सैयद नूरुलहदी—इसलिये नहीं करता कि मैं जानता हूँ, भवितव्यता अमिट है। भावी प्रबल है। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" ऐ ज़किया, हमको अपने बड़ों की भाँति आनेवाली आपदाओं को भुगतना चाहिए। मैं ज़ोर देकर कहता हूँ कि एक वर्ष में ख़ून, दूसरे में मुकुट का नष्ट-भ्रष्ट होना, तीसरे वर्ष ठोकरें और चौथे वर्ष भूकंप और महामारी होगी।

उपर्युक्त शब्द कहते-कहते सैयद साहब रोने लगे और फिर चुपचाप घर से उठ गए। ज़किया और उसकी माँ उस दृश्य-वर्णन से भयभीत हो गईं।

ग़दर

अंत में सन् १८५७ ई० का विख्यात ग़दर प्रारंभ हो गया। मेरठ की सेना बाग़ी होकर दिल्ली में आई, और उसने वर्णनातीत उत्पात मचाया। ज़किया और उसके पिता ग़दर के दिनों में घर से बाहर नहीं निकले। थोड़े दिनों पश्चात् अँगरेज़ों ने दिल्ली को फिर जीत लिया। विद्रोही सेना भाग गई, बहादुरशाह क़िला छोड़कर चले गए और गिरफ़्तार कर लिए गए।

शहर की लूट और पकड़-धकड़ के काल में भी सैयद साहब घर से बाहर न निकले। अंत में एक सैनिक दस्ता उनके घर में घुस गया और सैयद साहब को गिरफ़्तार कर लिया गया। दस्ते का अफ़सर अँगरेज़ था। सामान लूट लिया गया, और गोरे ने कहा— "तुम्हीं सैयद नूरुलहदी हो, और तुम्हीं ने सेना के अमुक सरदार को पत्र लिखे थे कि अँगरेज़ों की हत्या होनी चाहिए।"

सैयद साहब ने कहा—"हाँ, मैं वही नूरुलहदी हूँ।" अफ़सर ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—"तुम अपना दोष स्वीकार करते हो?" सैयद साहब ने कहा—"मैं अपने लेख को स्वीकार करता हूँ। दोष को नहीं।" गोरा अफ़सर बोला—"क्या तुम इसको दोष नहीं समझते कि गँवारों को एक झूठी बात लिखकर सार्वजनिक हत्या के लिये उकसाया जाय?" सैयद साहब ने उसका कुछ उत्तर न दिया और आकाश की ओर देखकर हँसने लगे। उनको हँसता देखकर अँगरेज़ अफ़सर क्रोध में आपे से बाहर हो गया, और उसने एक संगीन उनके होठों पर मारी, जिससे उनका जबड़ा कट गया, और ख़ून दाढ़ी पर बहने लगा। ज़किया यह देखकर चीख़ी। सैयद ने

घायल होकर भी तनिक भी घबराहट नहीं प्रकट की। फिर आकाश की ओर देखा, और ख़ून अपने मुख और छाती पर मलने लगे। यह देखकर अफ़सर ने संकेत किया, और एक सैनिक ने तलवार का एक ऐसा हाथ मारा कि सैयद साहब दो टुकड़े होकर गिर पड़े।

तदुपरांत दस्ता बाहर चला गया, और स्त्रियों से कुछ न कहा। ज़किया और नक़िया बड़ी घबराई हुई थीं। इसके पश्चात् वे शहीद के गाड़ने का प्रबंध करने लगीं। पर दिल्ली में उस समय ऐसा कोई न था, जो उनकी सहायता करता। अंत में उन्होंने ही स्वयं आँगन खोदकर शव को गाड़ दिया। घर का सब सामान लुट गया था। पर आटा, दाल और लकड़ी थीं। कुछ दिन तो उन्होंने उससे काटे, और उसकी समाप्ति पर उनको अपने भोजन की चिंता हुई।

शहर में शांति-घोषणा हो चुकी थी, और भागे हुए आदमी लौटकर बस रहे थे। ज़किया ने अपनी माँ से परामर्श करके दिल्ली के अफ़सर के नाम एक पत्र लिखवाने की ठहराई, जिससे कुछ सहायता मिल सके। नक़िया ने कहा—"पत्र तो लिख लोगी, पर उसको पहुँचावेगा कौन?" ज़किया ने कहा—"पड़ोस में जो आमिल साहब रहते हैं, सुना है, वह ग़दर में नहीं भागे, और सरकार के बड़े हितैषी हैं। तुम उनके पास जाकर यह पत्र किसी प्रकार पहुँचा दो।" नक़िया ने इस बात को माना, और पत्र लेकर आमिल साहब के पास गई। आमिल एक युवा था और घर की स्थिति से रईस प्रतीत होता था।

नक़िया ने बुर्क़े के भीतर से आमिल को अपनी दशा सुनाई। आमिल ने बड़ी सहानुभूति से कहा—"दिल्ली के अँगरेज़ अफ़सर से सहायता की आशा न करो। सैयद साहब का नाम बड़े बाग़ियों में लिखा हुआ है, और वास्तविक बात यह है कि उन्होंने सेना को भड़काने में बहुत भाग लिया। यदि तुम स्वीकार करो, तो मैं स्वयं

की तुम्हारी सहायता करूँ।" नज़िया ने कहा—"हम दान किसी से नहीं लेते। तुम्हारा कुछ काम हो, तो उसके बदले में जो दोगे, वह ले लेंगे।" आमिल ने कहा—"हाँ, अपनी लड़की से कहो कि वह मेरी पुस्तकों की एक सूची बना दे, और सड़ी-गली पुस्तकों को छाँटकर एक ओर कर दे। इसके बदले में तुमको दोनों समय पका-पकाया खाना और ऊपर का सब व्यय दिया करूँगा।"

नज़िया ने घर आकर सब बात ज़किया से कही, और उसने उस नौकरी को स्वीकार कर लिया। आमिल ने एक कमरा बता दिया, जहाँ किताबें थीं। ज़किया और नज़िया प्रातःकाल से सायंकाल तक वहाँ काम करने लगीं।

रद्दी में एक पत्र

ज़किया काग़ज़ों को ठीक कर रही थी कि उसको एक पत्र रद्दी में मिला, जो इस प्रकार था—

आमिल साहब, तावीज़ पहुँच गया। परामर्श के अनुसार हम कार्य करने को उद्यत हैं। धूनी पंजाब से आ गई है। श्रीमान् सैयद नूरुलहुदी के विषय में जो कुछ आपने लिखा है, ज्ञात हुआ। हम शीघ्र ही इनकी पूजा के लिये आवेंगे, और उनकी करामात के अनुसार उनको भेंट देंगे। हमको ऊपरी कष्ट बहुत है। क्या आप उसके उतार का कोई उपाय बता सकते हैं? पहले आपने कश्मीर के आमिल का पता बताया था। अब हम सबकी इच्छा कश्मीर की हो गई है।

भवदीय

विश्वासपात्र

न० न०

ज़किया इस पत्र को पढ़कर दंग रह गई और उसने बड़े विचार के पश्चात् समझा कि यह पत्र जनरल निकलसन का है, जो दिल्ली

आक्रमण के समय पहाड़ी पर था। तावीज़ से अभिप्राय खुफ़िया समाचार है, जो आमिल ने भेजा होगा। पंजाब की धूनी से तात्पर्य सेना और तोपख़ाना है, जो शब्द तावीज़ के कारण उस अर्थ में प्रयोग किया गया है। ऊपरी कष्ट का तात्पर्य पहाड़ी के मोर्चों के कष्ट से है, और उतार से यह अभिप्राय है कि दिल्ली में प्रवेश करने का उपाय बताइए। कश्मीर के आमिल से तात्पर्य कश्मीरी दरवाज़े से है, जहाँ से दिल्ली की दुबारा विजय के समय आक्रमण हुआ। सैयद नूरुलहदी की भेंट से मतलब उनके वध करने के निश्चय से है। ज़किया समझ गई कि न०न० का तात्पर्य निकलसन है और उसके बाप की मुख़बिरी आमिल ने की थी। यह विचार आते ही ज़किया की आँखों के सम्मुख अँधेरा छा गया, और उसने आमिल से अपने पिता का बदला लेने का निश्चय किया।

बस, दूसरे दिन रात को वह छुरी लेकर आमिल के घर गई। परंतु वहाँ जाकर उसने आमिल को शयन-स्थान में न पाया, और इस प्रकार नैराश्य में डूबी हुई ज़किया घर लौट आई। घर आकर उसने देखा कि उसकी माँ की लाश ख़ून में लत-पत पड़ी है, और उसके सिरहाने एक पत्र रक्खा है, जिसमें लिखा है—ज़किया ! तेरे विचार का बदला और तेरी प्यारी का अंत। तेरी माँ जिसने तुझे मुझ तक पहुँचाया, मार डाली गई। आज तूने मेरे मारने का विचार किया, तो मैंने उसका वध किया। अब पत्र पढ़ चुक। तू दिल्ली से बाहर जानेवाली है।

अंतिम वाक्य पढ़कर ज़किया माँ का शोक भूल गई, और चाहती थी कि शोर मचावे, और मुहल्लेवालों को सहायता के लिये पुकारे कि किसी ने दौड़कर उसका मुँह बंद कर दिया।

अंबाला

ज़किया का मुँह बंद किया गया। आँखें बंद की गईं। यहाँ तक

कि वह अचेत हो गई। जब उसको चेत हुआ, तो उसने अपने को एक अपरिचित घर में पाया। आमिल सामने बैठा हुआ था। ज़किया को सचेत पाकर उसने कहा—"तुम अंबाले में हो। मैं

अँगरेज़ों की शरण में आ गया हूँ। अब तुमको अपने बाप का बदला लेने का साहस नहीं हो सकता।" ज़किया ने कहा—"तनिक लज्जा करो। मैं पर-पुरुष को अपने सम्मुख नहीं देख सकती। तुम मेरे सामने से हट जाओ।" आमिल ने कहा—"अभी विवाह हो जायगा, और पर्दा उठ जायगा।" ज़किया ने अपने मुँह को हाथों से छिपा लिया, और अपने अंत और विवशता पर विचार करने लगी।

ख़ून

ज़किया ने अपने मुँह पर हाथ रक्खे ही थे कि आकस्मिक घोर

आहट का शब्द हुआ, और किसी ने गाली देकर आमिल के सिर पर कुछ मारा। ज़किया ने मुँह खोल दिया, और देखा कि आमिल के नौकर ने लठ मारकर आमिल को मार डाला है, और उससे कह रहा है—"जल्दी भागो। मैं तुमको बचाने आया हूँ।" ज़किया उसके साथ उठकर भागी। बाहर एक रथ खड़ा था। उसमें सवार होकर ख़ूनी नौकर के साथ वह चली गई।

करनाल

नौकर ज़किया को लेकर करनाल आया, जहाँ उसका घर था। ज़किया को अपनी माँ के पास उतारा, और बोला—"बहन, तुम सैयदानी हो। उस क्रूर आमिल की नौकरी में मैंने सब बात सुनी, और उसके बुरे विचार को जानकर मैंने उसको मारना धर्म समझा। अब आशीर्वाद दो कि पकड़ा न जाऊँ।" ये बातें हो ही रही थीं कि बाहर पुलीस ने उसको बुलाया। नौकर ने कहा—"लो, मृत्यु आ गई। अम्मा, परमात्मा ही स्वामी है। इस स्त्री की रक्षा करना। मैं भागता हूँ। बचा, तो कभी आऊँगा। नहीं तो यह अंतिम प्रणाम है।" यह कहकर वह दूसरे दरवाज़े से निकलकर भाग गया। पुलीस ने तीन-चार बार और बुलाया। कोई उत्तर न पाकर पुलीसवाले भीतर घुस आए और जब उनको उसके दूसरे द्वार से जाने का समाचार मिला, तो वे भी उसी मार्ग से निकल गए। पुलीस ने नौकर को बहुत कुछ ढूँढ़ा, पर उसका कोई पता न चला। अंत में सरकार ने नौकर के घर की ज़ब्ती की आज्ञा दी, और सारा सामान नीलाम हो गया। नौकर की माँ घर छोड़कर अपने किसी कुटुंबी के यहाँ चली गई, और ज़किया को साथ लेती गई। परंतु उस कुटुंबी ने उनको अपने यहाँ ठहरने नहीं दिया। कहा—"तुम सरकारी अभियुक्त से संबंध रखती हो। मैं अपने यहाँ इसी कारण तुमको ठहरा नहीं सकता।" नौकर की माँ ने अपने बहुत-से रिश्तेदारों के

द्वार खटखटाए; पर किसी ने भी उसको शरण नहीं दी। दुखी होकर अंत में बुढ़िया ने ज़किया से कहा—"अब चलो मसजिद में चलें। वह ईश्वर का स्थान है। वहाँ तो शांति मिलेगी।" परंतु, जब वे मसजिद में गईं, तो मुल्ला ने कहा—"यहाँ स्त्रियों के लिये स्थान नहीं है।" ज़किया ने कहा—"हम निराश्रया हैं, पीड़ित हैं। हमारे सब सहारे टूट गए। इसलिये परमात्मा के द्वार पर आश्रय ढूँढ़ने आए हैं। हमको न निकालो। हमारा कहीं ठिकाना नहीं है। हम कहाँ जायँ? हमें कोई भी अपने घर में नहीं घुसने देता। परमात्मा का भय कर, और निराश्रितों को धक्का मत दे।"

मुल्ला ने हँसकर कहा—"यह नमाज़ पढ़ने का स्थान है। सराय नहीं है, जिसमें तुम ठहरो। भला इसी में है कि स्वयं निकल जाओ, नहीं तो चुटिया पकड़कर निकाल दूँगा।" बुढ़िया ने कहा—"यह सैयदानी है। इसका अपमान मत कर, और ऐसे अपशब्द मुँह से न निकाल।" मुल्ला ने कहा—"ऐसी बहुत-सी सैयदानी देखी हैं। बातें न बनाओ, और यहाँ से जाओ।" यह कहकर मुल्ला ने दोनों को धक्का देकर निकाल दिया। धक्के से बुढ़िया औंधे मुँह गिर पड़ी। उसके रहे-सहे दो दाँत भी टूट गए। ज़किया ने बुढ़िया को सहारा देकर उठाया। अपने दुपट्टे से उसके मुँह का ख़ून पोंछा, और कहा—"अम्मा, घबराओ नहीं; परमात्मा हमारी सहायता करेगा।" बुढ़िया ने बड़े धीमे स्वर से कहा—"हाँ बेटी, ईश्वर ही मालिक है। मेरी छाती में गहरी चोट लगी है। मेरी साँस रुकी जाती है। मैं बीमार तो बहुत काल से थी, उस पर पुत्र का वियोग, घर की बरबादी, घर-घर का फिरना और फिर मुल्ला ने ऐसा धक्का मारा है कि अब मुझे जीवन की आशा नहीं प्रतीत होती। मेरे हृदय पर चोट लगी है।" यह कहते-कहते बुढ़िया को उबकाई आई, और उसने ख़ून की क़य की, जिससे ज्ञात हुआ कि उसके फेफड़े में गहरी

चोट लगी है। वमन करते ही बुढ़िया अचेत होने लगी, और ज़किया भी घबराई। बुढ़िया ने कहा—"ऐ मुल्ला! तूने मेरी जान वृथा ही ली। मैं इस दुखी सैयदानी को लेकर आई थी। मैं मरती हूँ, और उस भगवान् के दरबार में जाती हूँ, जहाँ पर तेरी इस कुत्सित करनी की जाँच होगी। आह! दम चला।" बुढ़िया को फिर उबकाई आई। उसने फ़िर ख़ून की क़य की, जिससे उसका काम तमाम हो गया। उसने एक हिचकी ली, और सदा के लिये शांत हो गई।

उस समय विचित्र दृश्य था। ज़किया बुढ़िया की लाश लिए मसजिद के द्वार पर बैठी थी, आँखों-ही-आँखों लोगों से बुढ़िया की अंत्येष्टि के लिये प्रार्थना कर रही थी। मुल्ला ने भय के मारे मसजिद के किवाड़े बंद कर लिए थे। कोई भी व्यक्ति ज़किया की सहायता के लिये नहीं था। थोड़ी देर बाद ज़किया की आँखों से आँसू ढरकने लगे। अकस्मात् एक फ़क़ीर उधर से आ निकला उसने जो एक मुर्दे को पड़ा देखा, तो मुहल्लेवालों से बुढ़िया के अंतिम क्रिया-कर्म के लिये प्रबंध कराया। क़ब्रिस्तान में जाकर ज़किया को ज्ञात हुआ कि बुड्ढे फ़क़ीर की झोपड़ी भी वहीं है। ज़किया ने उससे कहा—"बाबा, थोड़ा-सा स्थान अपने पास मुझे भी दो।" फ़क़ीर ने कहा—"बेटी, तेरा घर है। आनंद से रह।" फ़क़ीर प्रतिदिन भीख माँगने जाता, और रोटियाँ और पैसे इत्यादि लाता, जो स्वयं भी खाता और ज़किया को भी खिलाता।

ज़किया भीख माँगती है

कुछ दिनों के बाद फ़क़ीर बीमार हो गया। तब उसने ज़किया से कहा—"बेटी, अब तू शहर में जा, और भीख माँग ला।" ज़किया को पहले तो हिचकिचाहट हुई, और उसको यह ख़याल हुआ कि सैयदों को भीख माँगना मना है। पर यह ख़याल करके कि वह भीख के टुकड़े तो खा ही चुकी है, उसने बुर्क़ा पहना, झोली डाली और

शहर में जाकर कहा—"दुनिया नागफनी का फूल है। जो उसको चाहे, उसकी भूल है। क्या-से-क्या हो गया ज़रा-सी बार में। एक रत्ती-भर सोना न मिला रावण को मरती बार में। कहे ज़किया ईश्वर की दासी यश अपयश प्राणी अपने संग ले गया। पाप का दरिया है बाबा जिधर चाहे उधर बह गया।"

ज़किया के इन शब्दों से धूम मच गई। किसी ने कुछ दिया और किसी ने कुछ। इसी तरह ज़किया दूसरे-तीसरे दिन आकर शहर में भीख माँगती, और क़ब्रिस्तान में फ़क़ीर के और अपने दिन काटती। कुछ दिनों के बाद बूढ़ा फ़क़ीर मर गया। पर ज़किया ने वह स्थान नहीं छोड़ा, और सप्ताह में एक बार वह लोगों को उपदेश देती और लोग भी उसके उपदेशामृत से लाभ उठाते। इसी प्रकार बहुत दिन कटे, और उसने एक चरित्रवान् सैयद से विवाह कर लिया। वह कपड़े का व्यापारी था, और एक अमीर आदमी। ज़किया के अनुरोध से उसने क़ब्रिस्तान में ही अपना घर बनाया। ज़किया का संपूर्ण जीवन धार्मिक रहा, और लोग उसे ज़किया वियाबानी कहते थे। कहीं-कहीं अब भी वह इस नाम से विख्यात है।

सोलहवाँ अध्याय

दो राजकुमार जेल में

मिर्ज़ा तेग़जमाल की आयु अब अस्सी वर्ष की है। सन् ५७ के ग़दर में वह उन्नीस-बीस वर्ष के हृष्ट-पुष्ट युवा थे, और उनको ग़दर से पहले की बातें ऐसी याद हैं, मानो वे अभी कल की बीती हुई बातों का वर्णन कर रहे हों।

मिर्ज़ा तेग़जमाल बहादुरशाह के उत्तराधिकारी मिर्ज़ा फ़ख़र के द्वितीय पुत्र हैं। मिर्ज़ा दाराबख़्त बहादुरशाह के प्रथम उत्तराधिकारी थे। परंतु उनकी मृत्यु के कारण मिर्ज़ा फ़ख़र ही उनके उत्तराधिकारी मनोनीत किए गए थे।

मिर्ज़ा फ़ख़र बड़े ही दयालु और न्यायी थे। यदि दिल्ली की गद्दी बनी रहती, तो यह भारतवर्ष के बड़े दयालु राजा होते। पर युवावस्था की तरंगों में बड़े-बड़े ऋषि-मुनि डिग जाते हैं, फिर बादशाह के लड़कों का क्या कहना, जिनको विलासिता की सामग्री और धन-धान्य की कमी न थी। इसके अतिरिक्त उन दिनों लाल क़िले का आंतरिक सामाजिक जीवन बड़ा ही पतित था, और चरित्र-भ्रष्टता की कोई सीमा न थी। इसीलिये मिर्ज़ा फ़ख़र की युवावस्था की ऐसी भूल, जिसमें वह एक मृगनयनी के कटाक्ष का शिकार हुए थे, कोई विशेष विचारणीय नहीं है। मिर्ज़ा तेग़जमाल ऐसी ही भूल के फल हैं। उनके पश्चात् मिर्ज़ा तेग़जमाल की माँ से और कोई संतान नहीं हुई।

तेग़जमाल विचित्र प्रकृति के व्यक्ति हैं। उनको पेंशन न मिलने और राजकुमार न कहलाए जाने का तनिक भी शोक नहीं है, और

वह अपने माता-पिता के रहस्य-पूर्ण संबंध का ऐसे आनंद से वर्णन करते हैं, मानो उस प्रेम-कथा से उन्हें कोई व्यक्तिगत संबंध ही नहीं। तेगजमाल का कहना है—"अम्मा की आयु सोलह वर्ष की थी, और पिताजी की तेरह वर्ष की। उसी समय उन दोनों में प्रेम की छेड़-छाड़ आरंभ हो गई थी।" यह पूछे जाने पर कि तेरह वर्ष का बच्चा सोलह वर्ष की स्त्री से किस प्रकार प्रेम कर सकता है, तेगजमाल कहते हैं—"जिस प्रकार अस्सी वर्ष का बुड्ढा षोडषवर्षीया युवती से प्रेम का दम भरता है।" हम मुग़लों में बच्चे बहुत ही जल्दी युवा हो जाते थे। लड़कियाँ तो कभी-कभी ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था में ही युवती हो जाती थीं, इसी प्रकार लड़के भी बारह-तेरह वर्ष की आयु में ही प्रेम और नायिका-भेद के रहस्यों पर बातचीत शुरू कर देते थे।

मेरी अम्मा एक कहार की लड़की थीं। नानी अम्मा को महल की सब कहारियों में चतुर समझती थीं। मेरी माँ अति ही रूपवती थीं। होने को तो अम्मा शाही महल की परिचारिका थीं, पर वह ख़ानिम के बाज़ार में मेरी नानी और नाना के साथ रहती थीं। एक दिन की बात है कि पिताजी ड्योढ़ी के दारोग़ा के साथ अपनी कमान ठीक कराके ख़ानिम के बाज़ार चले गए। वहाँ कहीं उन्होंने अम्मा को देख लिया, और उसी समय से वह उनके प्रेम-पाश में फँस गए। घर आने पर एक टूटी चारपाई लेकर पड़ रहे, और रोना शुरू किया। मेरी दादी और अन्य कुटुंबियों ने कारण पूछा। पर उन्होंने कुछ न बताया। वह तो प्रेम की विपत्ति में पड़े थे, और चुपचाप रो रहे थे। अंत में धीरे-धीरे बात खुल गई, और महल में ख़ूब ही विनोद रहा। राजकुमारियाँ पिताजी को छेड़ने लगीं, और बराबरवाले राजकुमारों में इशारे होने लगे। धीरे-धीरे नानी को सब समाचार मिले। उन्होंने अम्मा को साथ लेकर दादीजी की

ड्योढ़ी पर हाज़िरी लिखा दी, और फिर भीतर गई और अम्मा को उनके सिपुर्द किया। पर पिताजी अम्मा से झेंपते थे। अकेले-दुकेले में जब अम्मा उनसे बात करना चाहतीं; तो वह भाग जाते थे। पर एक वर्ष बाद ही मेरा जन्म हुआ। दादी ने बहुत चाहा कि मेरी माँ राजसी ठाठ से महल में रहें; पर मेरी नानी ने न माना, और मेरी माँ फिर ख़ानिम के बाज़ार में रहने लगीं। जब मैं छः वर्ष का हुआ, तो लाल क़िले में अपने बाप के पास आकर रहने लगा। मैं ननसाल की ओर से तो कहार हूँ, और बाप की ओर से बादशाहज़ादा। ननसाल में मनुष्यों का बोझ उठाते हैं, और बाप की ओर से भी देश के मनुष्यों का बोझ उठाया जाता था।

ग़दर के बीस वर्ष उपरांत

ग़दर के दिनों में अपनी माँ के साथ दिल्ली से भागकर हम लोग शाहजहाँपुर चले गए थे। वहाँ पर मेरी ननसाल का पुराना कुटुंब रहता था। महल के राजकुमारों की दशा देखकर मैंने उनका साथ छोड़ दिया, और माँ के पास चला गया। राजकुमारों का जीवन ग़दर के दिनों में दो कौड़ी के भी बराबर न था। मुझे अपनी भलाई इसी में प्रतीत हुई कि मैं कहारों में जाकर रहूँ, और कहार कहलाऊँ। अम्मा के पास बहुत धन था। शाहजहाँपुर जाकर मैंने हलवाई की दूकान कर ली। एक दिन की बात है, एक पठान दूकान पर मिठाई लेने आया, और मिठाई लेकर खाते समय मिठाई को बुरा बतलाते हुए उसने मुझे गाली दी। मुझमें तो शाही ख़ून था ही, मुझसे गाली नहीं सही गई। मैंने लोहे का सबल उठाकर पठान के मारा, जिससे वह उसी ठौर टें होकर रह गया। मैं पकड़ा गया, और महीनों मुक़दमा चलता रहा। अंत में चौदह वर्ष के कारागार का मुझे दंड दिया गया।

बरेली का जेलख़ाना
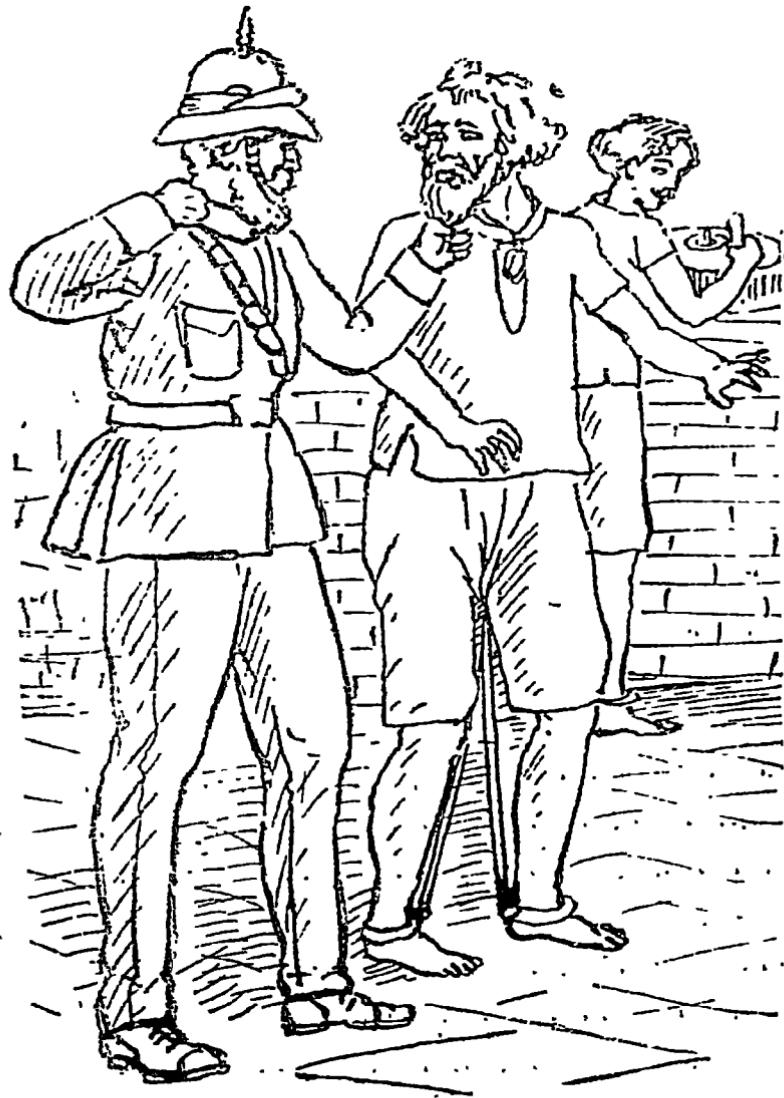
पहले दिन जब मैंने जेलख़ाने में प्रवेश किया, तो मुझे अपने दंडित होने पर तनिक भी शोक नहीं था; क्योंकि प्रारंभ से ही प्रसन्न और निर्द्वंद्व रहने का मेरा स्वभाव था। शोक और चिंता तो मेरे पास फटकनी तक न थी। क़ैद होने की आज्ञा सुनकर भी प्रसन्न था। जब अम्मा मुझसे मिलने आईं, और रोने लगीं, तो मैंने हँसकर कहा—"आप रोती क्यों हैं? दूकान पर इतनी मिठाई छोड़ आया हूँ, जो कई महीने तक खाती रहोगी।" अम्मा ने कहा—"बस, तुझको तो प्रत्येक समय हँसी सूझती है। मेरा ऐसा कौन रक्षक है, जो चौदह वर्ष तक मेरी सुध लेगा? मैंने तो तेरे ही ऊपर परदेश में बीस वर्ष काट दिए; नहीं तो दिल्ली की-सी बात इस गाँव में कहाँ?" मैंने उत्तर दिया—"जब हमारा सब कुटुंब ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया, और हमारे भाई सूली पर लटकाए गए तो तुम किस गिनती में हो? चौदह साल की बात ही क्या है, पलक मारते ही बीत जायँगे। "दिवस जात नहिं लागहिं बारा।" शीघ्र ही मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा। तनिक अपनी बहू—मेरी स्त्री—का ख़याल रखना। उसका हृदय तुम्हारी कठोरता से मैला न होने पावे। तुम्हारा स्वभाव राजसी है, और वह बेचारी केवल एक कहारी है। कृपया उस पर शाही रोब न डाँटना।" अम्मा ये बातें सुनकर हँसने लगीं, और यह कहती हुई चली गईं—"पता नहीं, तू इतना ढीठ और निर्लज्ज क्यों है। अच्छा जा, परमात्मा पर तुझे छोड़ती हूँ।"

जिस समय मुझे जेलख़ाने के कपड़े पहनने को दिए गए, तो मैंने हँसी से कहा कि इस जाँघिए को रहने दीजिए। मुझे अपना पाजामा इससे अधिक प्यारा है। यह बात जेल के वार्डर को कब सह्य हो सकती थी। उसने दो-तीन डंडे रसीद किए, और कहा—"यह तेरी अम्मा का घर नहीं है, जो दिल्लगी की बातें करता है।"

मैंने डंडे खाकर भी हँसी का उत्तर दिया कि "भाई अम्मा का घर तो ख़ानिम के बाज़ार में था, और वह तो संपूर्ण मुहल्ले के साथ खोदकर नष्ट कर दिया गया। दादी का घर लाल क़िले में था, जिस में अब गोरे रहते हैं। मैं तो इसे सुसराल समझकर आया था, जहाँ जूतियों की तो हँसी होती है, पर डंडा कोई नहीं मारता। तुम मेरे साले हो या ससुर।" यह सुनकर वार्डर आग-बबूला हो गया, और उसने दो-तीन क़ैदियों की सहायता से मुझे इतना पीटा कि मैं अचेत होकर गिर पड़ा। जब चेत हुआ, तो एक कोठरी में अपने को पड़ा पाया। वार्डर सामने खड़ा था। मैंने फिर भी कहा—"महाशय, मारने का सगुन हो चुका। अब अपनी बहन को यहाँ लाइए, जो मुझको खाना दें, और हल्दी-चूना चोट पर लगावे।" वार्डर को इस पर हँसी आ गई, और कहने लगा—"तुम आदमी हो या पत्थर? किसी बात का भी तुम पर असर नहीं पड़ता। यह जेलख़ाना है। यहाँ पर ये फ़बितयाँ शोभा नहीं देतीं। तुमको चौदह वर्ष काटने हैं। सीधे रहोगे तो भला है, नहीं तो पिटते-पिटते चौदह दिन के भीतर ही समाप्त हो जाओगे। मैंने कहा कि "मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य को क़ब्र के जेलख़ाने में जाना पड़ता है। पर मुझे मृत व्यक्ति पर बड़ा क्रोध आता है कि वह क्यों चुपचाप कफ़न ओढ़के क़ब्र में चला जाता है? मैं तो मरने के पश्चात् भी चुप न रहूँगा, और जो व्यक्ति मेरे पास रहेगा, उसको भी ऐसा बनाऊँगा कि वह मरे तो चुपका न रहे। वरन् हँसता-बोलता क़ब्र में जाय। यदि तुमको संदेह हो, तो तुम भी मरके देख लो, या कहो, तो मैं ही मार डालूँगा।"

वार्डर ने समझा कि मैं पागल हूँ, और वह हँसता हुआ बाहर चला गया। थोड़ी देर पश्चात् मुझे चक्की में जोतने के लिये वहाँ ले जाया गया, जहाँ एक-एक चक्की पर दो आदमी मिलकर आटा

पीस रहे थे। मुझे एक चक्की पर लगाया गया। मेरा साथी एक बुड्ढा और कदाचित् नवागंतुक था। वह फूट-फूटकर रो रहा था। मैंने

उसको झुककर प्रणाम किया, और कहा—"नानाजी, आप क्यों रो रहे हैं? मैं तो वर्णसंकर हूँ—आधा मुग़ल राजकुमार, और आधा कहार। अब आपके साथ चक्की का कार्य करके मुझमें एक नवीन शाखा और लग गई।"

बुड्ढे ने मेरी बात पर तनिक भी ध्यान न दिया। उसके हृदय पर ऐसी गहरी चोट लगी थी कि अंत में मैं भी प्रभावान्वित हो गया। मैंने कहा—"आप बैठ जाइए। मैं अकेला चक्की चलाऊँगा और आपके हिस्से का भी पीस डालूँगा।" बुड्ढे ने मेरी बात का कुछ उत्तर न दिया, और खड़ा रोता रहा। परंतु जब वार्डर ने उसकी सफ़ेद दाढ़ी पकड़कर एक तमाचा मारा, और रोना बंद करके पीसने को कहा, तो बुड्ढा भयभीत हो गया और चक्की चलाने लगा। बुड्ढे का मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि मैं अपने ठठोलपन को भूल गया और उसके साथ चक्की चलाने लगा। कई दिन तक यही दशा रही। मैं बुड्ढे से बहुत कुछ बोलना चाहता था; पर वह मेरी बात का उत्तर न देता, और रोता रहता था। आठवें दिन, अंत में, उसने अपनी आत्मकहानी सुनाई।

शाहआलम का प्रपौत्र

मैं मिर्ज़ा जहाँगीर का बेटा हूँ, जो बादशाह अकबर द्वितीय के बेटे, शाहआलम के पोते और बहादुरशाह के भाई थे। जब मेरे पिता मिर्ज़ा जहाँगीर ने सैटीन-नामक गोरे के गोली मारी, तो उस अभियोग के कारण क़ैद करके इलाहाबाद भेजे गए। मेरी माँ पहरेवाले अफ़सर की लड़की थीं। विवाह होने के समय से मेरे जन्म तक पिताजी ने मेरे नाना और माँ को इतनी संपत्ति दी कि सात पीढ़ी तक के लिये यथेष्ट होती। मेरी दादी अपने बेटे को दिल्ली से लगातार हीरे-मोती भेजा करती थीं, और उनके पास धन की कोई कमी न थी।

पिताजी की मृत्यु के पश्चात् मेरा पालन-पोषण नाना के यहाँ हुआ, और ऐसे ढंग से हुआ कि संसार में शायद ही किसी बच्चे का इतना लाड़-प्यार किया गया होगा। बड़े होने पर मुझको प्रत्येक प्रकार की शिक्षा दी गई। अरबी और फ़ारसी की शिक्षा समाप्त करने के उपरांत मैंने कपड़े की दूकान कर ली। दिन-भर दूकानदारी करता और सायंकाल को ईश्वर-भजन के पश्चात् अपने घरवालों के साथ आनंद से रहता। परमात्मा की कृपा से मेरे चार बच्चे हुए। वृद्धा माँ अब भी जीवित हैं। एक दिन की बात है कि एक थानेदार मेरी दूकान पर कुछ कपड़ा मोल लेने आया। स्वभावानुसार मैंने एक दाम कह दिया। उसने वाद-विवाद प्रारंभ किया। मैंने कहा—"मेरी दूकान पर झूठ नहीं बोला जाता।" इस बात पर वह बिगड़कर बोला—"बड़ा ईमानदार बनता है! तुझ-जैसे ठग मैंने बहुत-से जेलख़ाने में भिजवा दिए हैं।" मैंने कहा—"ज़बान सँभालकर बोल।" इस पर उसको इतना क्रोध आया कि उसने मुँह पर तमाचा मारा। फिर मुझसे भी नहीं रहा गया, और दो झापड़ मैंने भी रख दिए। बस, फिर क्या था। सिपाहियों ने मुझको हवालात में बंद करके मेरे घर की तलाशी ली, और चोरी के कपड़ों का बहाना करके मेरे ऊपर मुक़दमा दायर कर दिया। मैंने अपनी सफ़ाई में बहुत कुछ कहा, और अफ़सरों के सामने वास्तविक बात कह दी। पर किसी ने कुछ न सुना, और छः महीने की कड़ी सज़ा का दंड दिया। मेरी स्त्री और वृद्धा माता ने घर की सब संपत्ति बेचकर मुक़दमे में व्यय कर दी। वे ग़रीब हो गईं, और फल कुछ न निकला। मेरे जेलख़ाने में आने की नौबत आ गई। सबसे अधिक मुझे माँ का शोक है। वह मुझसे हवालात में मिलने आई थीं। मेरी दशा देखकर रोकर गिर पड़ीं, और अचेत हो गईं। उनके कोमल हृदय को ऐसा धक्का लगा कि फिर वह सचेत ही नहीं हुईं। उस समय मेरा बड़ा लड़का, जिसकी आयु

बारह साल की है, उनके साथ था। वह घबरा गया, और मुझसे कहने लगा—"अब्बा, दादी चल बसीं।" मैं चाहता था कि माँ के अंतिम दर्शन कर लूँ। पर क्रूर थानेदार के सिपाही मुझे ढकेलकर जेलखाने में ले आए, और माँ की लाश वहीं पड़ी रह गई। चलते समय मैंने अपने लड़के को यह कहते सुना—"अब्बा, हम लोग कहाँ जायँ? अब ये सिपाही हमको भी मारेंगे। दादी को कैसे घर ले जायँ। तुम तनिक ठहरो अब्बाजी!" मैं इसी शोक में घुला जाता हूँ। पता नहीं, स्त्री-बच्चों पर क्या बीतती होगी, और निर्दयी थानेदार ने उन पर क्या-क्या अत्याचार किए होंगे।

मिर्ज़ा तेग़जमाल यह सुनकर खिल-खिलाकर हँस पड़े, और कहा—"यह संसार बड़ा विचित्र है। मेरी-तुम्हारी एक-सी दशा है, और एक वंश का मुझमें और तुममें ख़ून है। पर तुम शोक के खड्डे में पड़े हो और मैं प्रसन्नता-पर्वत पर आनंद करता हूँ। एक प्रकार का व्यक्ति, एक ही प्रकार का खाना और एक ही प्रकार का सोना। पर किसी का स्वभाव रोने-पीटने का है, कोई प्रतिक्षण चिंतित रहता है, और कोई प्रातःकाल से सायंकाल तक केवल हँसने-हँसाने के किसी शोक के पास नहीं फटकता। भाई साहब, क़ैद तुम भी काटोगे, और मैं भी। तुमको यह जीवन दूभर और भारू प्रतीत होता है, पर मैं इसकी तनिक भी चिंता नहीं करता, और यों ही हँसी-ख़ुशी रहूँगा, जैसा कि अब हूँ।"

सत्रहवाँ अध्याय

हरे वस्त्र पहने स्त्री की लड़ाई

दिल्ली के दो बुड्ढे, जो ग़दर, सन् १८५७ ई०, में युवा थे, वर्णन करते हैं कि जिस समय अँगरेज़ी सेना ने पहाड़ी पर मोर्चे बनाए थे, और कश्मीरी-दरवाज़े की ओर से दिल्ली नगर पर गोला-बारी की जाती थी, उस समय एक मुसलमान बुढ़िया स्त्री हरे वस्त्र पहने हुए शहरों के बाज़ारों में आती और शंख-ध्वनि करती—"आओ, ईश्वर ने तुमको स्वर्ग में बुलाया है ।" शहर के लोगों के झुंड-के-झुंड उसके शब्द को सुनकर एकत्र हो जाते । वह उन सबको ले जाकर कश्मीरी-दरवाज़े पर आक्रमण करती और शहरवालों को प्रातःकाल से सायंकाल तक खूब लड़ाती । कुछ लोग अपनी आँखों-देखी बात कहते हैं कि उस स्त्री का साहस विचित्र था । उसको मृत्यु का कुछ भी भय न था । वह गोलों और गोलियों की बौछार में वीर योद्धाओं की भाँति आगे बढ़ी चली जाती थी । कभी उसको पैदल देखा जाता, और कभी घोड़े पर । उसके पास तलवार, बंदूक़ और एक झंडा होता था । बंदूक़ चलाने में वह बड़ी ही प्रवीण थी । जो लोग उसके साथ पहाड़ी से मोर्चे तक गए हैं, उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—"वह तलवार चलाने में भी बड़ी निपुणता रखती थी, और अनेकों बार उसने अँगरेज़ों की सेना से मुठभेड़ की । उसके साहस को देखकर शहर की जनता बड़ी प्रोत्साहित होती थी । वह बढ़-बढ़कर आक्रमण करती थी । पर युद्ध-कला की अनभिज्ञता के कारण उनको भागना पड़ता था । जब वे भागते थे, तो वह स्त्री उनको बहुत रोकती, और अंत में बाध्य होकर

स्वयं भी लौट आती थी। परंतु लौट आने के उपरांत फिर किसी को ज्ञात न होता कि वह कहाँ चली जाती थी और फिर कहाँ से आती थी। अंत में इसी प्रकार एक दिन ऐसा हुआ कि वह उत्साह में भरी हुई आक्रमण करती, बंदूक़ मारती, तलवार चलाती मोर्चे तक पहुँच गई, और वहाँ घायल होकर घोड़े से गिरा। अँगरेज़ी सेना ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। फिर किसी को ज्ञात न हुआ कि वह कहाँ गई, और उसका क्या हुआ ?"

एक अँगरेज़ अफ़सर का प्रमाण

दिल्ली की प्रांतीय सरकार ने कुछ वे पत्र प्रकाशित कराए हैं, जो दिल्ली के घेरे के समय अँगरेज़ी सेना के अफ़सरों ने लिखे थे। उन पत्रों में एक पत्र लेफ़्टिनेंट डब्ल्यू० एस्० आर० हडसन साहब का है, जो उन्होंने दिल्ली-कैंप में २१ जुलाई, सन् १८५७ ई० को मिस्टर गिल्स फ़ारसाइना (डिप्टी कमिश्नर, अंबाला) के नाम भेजा था। उसमें उस बुढ़िया के विषय में लिखा है—

"मेरे प्यारे फ़ारसाइना,

मैं तुम्हारे पास एक बुढ़िया मुसलमान स्त्री को भेजता हूँ। यह एक विचित्र स्त्री है। इसका काम यह था कि हरे कपड़े पहनकर शहर के लोगों को ग़दर के लिये भड़काना और स्वयं अस्त्र-शस्त्र बाँधकर उनकी कमांड करती हुई हमारे मोर्चों पर आक्रमण करती थी। जिन सैनिकों का इससे मुक़ाबला पड़ा, उनका कहना है, इसने अनेकों बार बड़ी वीरता से आक्रमण किए, बड़ी तेज़ी से अस्त्र-शस्त्र चलाए और इसमें पाँच पुरुषों के बराबर बल है। जिस दिन पकड़ी गई, उस दिन घोड़े पर सवार थी, और शहर के विद्रोहियों को सैनिक ढंग से लड़ा रही थी। इसके पास बंदूक़ थी, जिससे इसने बहुत-से सैनिकों को मारा, और अपनी तलवार से भी इसने हमारे बहुत-से सैनिकों का वध किया। परंतु विद्रोहियों के भाग जाने के

कारण वह घायल होकर गिर पड़ी। जनरल साहब के सम्मुख पेश हुई, तो उन्होंने स्त्री के विचार से उसको मुक्त करने की आज्ञा दी। पर मैंने उनको रोका, और कहा—'यदि यह मुक्त हो गई, तो शहर में जाकर अपनी दैवी शक्ति की घोषणा करेगी। अंधविश्वासी लोग इसकी मुक्ति को एक दैवी घटना ही समझेंगे, और संभव है, यह स्त्री फ़्रांस की विख्यात स्त्री (आर्क जोन) के समान हमारे दुख का कारण हो जाय।' जनरल साहब ने मेरे परामर्श को स्वीकार किया, और इस स्त्री को क़ैद करने की आज्ञा दी। इसलिये इसको आपकी सेवा में भेजा जाता है। आशा है, आप इसकी हिरासत का उचित प्रबंध करेंगे; क्योंकि यह डाइन बहुत ही भयानक स्त्री है।

हडसन"

परिचय

दिल्ली-ग़दर की हरे वस्त्र धारण करनेवाली स्त्री के विषय में बड़ी-बड़ी किंवदंतियाँ हैं। टोंक-राज्य के एक महाशय का कहना है कि वह स्त्री अहमदशाह अब्दाली की सेना के अफ़सर की नातिन थी। सन् १७६१ ई० में उसके पिता की आयु बहुत छोटी थी। युद्ध के उपरांत वह भावलपुर चले गए। वहीं उनका विवाह हुआ, और उनके एक कन्या जन्मी, जो हरे कपड़े पहननेवाली ग़दर की स्त्री कहलाई।

भावलपुर से वह अपने पिता के साथ जयपुर आई। जयपुर में उसके पिता ने नौकरी कर ली। वहीं उनका देहांत हुआ। इसका विवाह राजा साहब के एक मुसलमान चोबदार से हो गया। थोड़े दिनों बाद इसका पति बीमार पड़ा, और स्त्री को एक भयंकर स्वप्न दिखाई पड़ा। अगले दिन उसके पति की मृत्यु हो गई। पति-वियोग से उस पर वज्राघात हुआ। वह कुछ पागल-सी हो गई, और फिर तीर्थ-यात्रा को निकल पड़ी। कहते हैं, ईश्वर-प्रेरणा से उसने शहीद होना निश्चय किया, और इसी कारण वह दिल्ली आई।

बहुतों का कहना है कि वह कोई और ही स्त्री रही होगी; क्योंकि यदि वह किसी की चेली होती—जैसा कहा जाता है कि हाजी लाल साहब की वह चेली थी—तो उसने युद्ध-विद्या कहाँ सीखी ? कदाचित् ग़दर के प्रवर्तकों ने लोगों को प्रोत्साहन देने के लिये किसी स्त्री को नियुक्त किया हो। कुछ भी हो, उस स्त्री की वास्तविकता बड़ी ही रहस्य-पूर्ण है, और दिल्ली-ग़दर के कारनामों में उसका नाम विशेष उल्लेखनीय है। यदि उसको राज-काज में जुटाया जाता, तो अवश्यमेव वह उसमें बड़ी प्रवीण होती।

प्रत्येक भारतवासी का धर्म है कि वह उस वीरांगना—हरे वस्त्र पहननेवाली स्त्री—के अदम्य साहस, शौर्य और युद्ध-विद्या की घटना को सगर्व स्मरण करे।

अठारहवाँ अध्याय

मेखला

"दिलशाद ! गुदगुदा न ! मुझे सोने दे ।"

"संध्या का समय निकला जाता है ।"

"तो क्या करूँ ? आँख खोलने को जी नहीं चाहता ।"

"राजकुमारी ! गुदगुदी नहीं की । यह गुलाब का फूल आपके तलवों से आँखें मल रहा है ।"

"मैं इस फूल को मसल डालूँगी । इतने सबेरे मुझे क्यों जगाती है ? मेरा जी अभी सोने को चाहता है । तनिक सुंदरी को बुला, बाँसुरी बजावे । हलके स्वर में भैरवी सुनावे । गुलचमन कहाँ है ? तू ही कोई कहानी शुरू कर ।"

"कहानी कहूँगी, तो पथिक मार्ग भूल जायँगे । दिन में कहानी नहीं कहते । सुंदरी उपस्थित है । गुलचमन को बुलाती हूँ । माँ आ जायँगी, तो ख़फ़ा होंगी कि मैजमाल को अभी तक जगाया नहीं ।"

सुंदरी बाँसुरी बजा रही थी कि मैजमाल ने आँख खोल दीं, बालों को समेटा, मुसकिराई । नरगिस ने प्रणाम किया । उत्तर में उसके एक चुटकी ली गई । अँगड़ाई लेकर उठ बैठी, और कहा— "दिलशाद, नरगिस के हमने चुटकी ली, तो यह हँसी नहीं । मुँह बना लिया । आ, तू आ । तेरे कान मरोड़ूँ, और तू ख़ूब हँस ।"

दिलशाद उठकर भागी, और दूर खड़ी हो गई । फिर कहा— "लीजिए, मैं खिल-खिलाकर हँसती हूँ । आप समझ लीजिए कि कान मरोड़ दिए ।"

मैजमाल ने फिर अँगड़ाई ली, और मुसकिराती हुई उठी ।

हाथ-मुँह धोकर भगवत्-भजन में लगी। फिर शीघ्र ही आँगन में निकली, और बाग़ के एक तख़्त पर बैठ गई। सब बाँदियाँ कलेवे की तैयारी में लगीं।

थोड़ी देर में मालिन एक अत्यंत सुंदर झबरी में कुछ मिरचें लाई। उसने आते ही मैजमाल को अनेक आशीर्वाद दिए। फिर बोली—"आज सरकार के लगाए हुए पौदों में ये मिरचें लगी थीं। भेंट के लिये लाई हूँ।"

मैजमाल ने झबरी ले ली। सब बाँदियों को बुलाया, और मिरचों के आने से महल में एक धूम मच गई। नरगिस ने कहा—"कैसी हरी-हरी और चिकनी सूरत है!" दिलशाद ने कहा—"जैसे राजकुमारी के कपोल।" सुंदरी ने कहा—"कैसी चुपचाप झबरी में लेटी हैं, जैसे राजकुमारी छपरखट में सोती हैं।" गुलचमन बोली—"डाली से टूटी हैं, घर से छूटी हैं, इसलिये तनिक चुप हैं।"

मैजमाल ने कहा—"मालिन को जोड़ा दो। कपड़े पहनाओ। पाँच रुपए नक़द भी देना। मेरे पेड़ों का पहला फल लाई है। इसका मुँह मीठा करना।"

मालिन को रेशमी जोड़ा, चाँदी के कड़े पहनाए गए। लड्डू खिलाए गए। पाँच रुपए नक़द और एक पान का बीड़ा मिला। वह आशीर्वाद देती हुई अपने घर गई। उधर मैजमाल की माता को एक बाँदी यह समाचार देने गई कि राजकुमारी के पेड़ों का पहला फल आया है। वह पास के घर से आई। मुग़लानी साथ थीं। बेटी को प्यार किया, और मैजमाल ने प्रणाम। माँ और मुग़लानियों ने मिरचों की बड़ी प्रशंसा की, और थोड़ी देर तक मिरचों पर ख़ूब वार्तालाप होता रहा।

मैजमाल ख़ुरशेद जमाल की इकलौती बेटी थी। उसके पिता मिर्ज़ा अलीगौहर उर्फ़ नीली शाहआलम के बेटे अकबर द्वितीय के

भाई थे, जो मर चुके थे। दासियों से उनके कई बच्चे थे। परंतु बेगम से केवल मैंजमाल ही उत्पन्न हुई थी, और वह भी बुढ़ापे में। जब मिर्ज़ा नीली का देहांत हुआ, तब मैंजमाल की आयु पाँच वर्ष की थी। इस समय पंद्रहवें वर्ष में थी। रंग साँवला है। आकृति किताबी है, क़द मँझोला है, आँखें श्याम वर्ण और अत्यंत रसीली और मदभरी। स्वर में प्राकृतिक रूप से ही विरह है। जब हँसकर बोलती है, तो यह प्रतीत होता है कि कोई जैसे विरहा गा रहा है। सुनकर कलेजे पर चोट लगती है। वह बहुत चंचल, हठी, आराम चाहनेवाली और कोमल-स्वभाव की है। लाड़-प्यार में पली है। राजकुमारी है। बिना बाप की है। इकलौती है। इकहरी देह की है। चलती है, तो बड़े ही अप्राकृतिक ढंग से शरीर को झुकाकर। पुष्प-पल्लवित लता की भाँति इधर-उधर झोंके खाती हुई चलती है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर ठोकरें खाती है। दासियाँ साथ दौड़ती हैं।

बहादुरशाह अपने नवीन महल में रहते थे। रानियाँ भीतर थीं। परंतु ख़ुरशेद जमाल और मैंजमाल ने दूसरा घर ले लिया था; क्योंकि मिर्ज़ा नीली के समय से उनका और बहादुरशाह का मनोमालिन्य था। बहादुरशाह को अँगरेज़ एक लाख रुपए मासिक देते थे। उसमें से एक हज़ार रुपए मासिक ख़ुरशेद जमाल को अलग भेजा जाता था। चीज़ों का भाव मद्दा था। एक हज़ार रुपए आजकल के एक लाख रुपए के बराबर थे, और ख़ुरशेद जमाल आनंद से ठाट-बाट का जीवन व्यतीत करती थी।

एक बार की बात है कि दिल्ली में एक मेला था। हिंदू-मुसलमान बढ़िया वस्त्र पहने हुए पंखे की सवारी के साथ जा रहे थे। महल में नफ़ीरी बज रही थी। मैंजमाल दोपहर से ही खिड़की पर बैठी थी। सायंकाल का समय होने आया। मैंजमाल उठ रही थी कि उसकी दृष्टि एक मेखलाधारी साधु पर पड़ी। साधु का रंग पीला था।
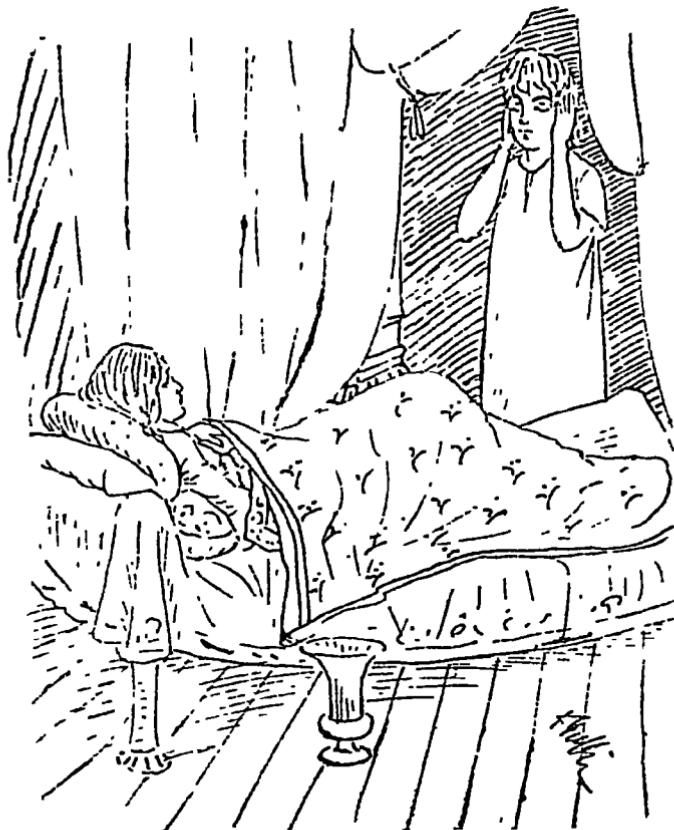
उसका सिर नंगा था, और पैर भी नंगे। साधु पंखे के समीप होकर निकला, और ऊपर—मैजमाल की खिड़की की ओर—देखता हुआ निकल गया। उसकी मेखला और भेष देखकर मैजमाल भयभीत हो गई। बाग़ में घूमने गई, तो भी मेखला का ध्यान था। रात को सोई, तो भी मेखला कई बार दिखाई दी। प्रातःकाल उसको हलका-हलका ज्वर था। माँ को समाचार भेजा गया। माँ ने कुछ मंत्र-जंत्र किया, और एक तावीज़ गले में बाँधा। दान-पुण्य किया गया। दोपहर को ज्वर बढ़ गया। मैजमाल चौंक उठती और कहती थी—"वह मेखलावाला आया। वह मुझे बुलाता है। अम्माजी, आना, वह देखो खड़ा मुसकिराता है।"

माँ ने दासियों से पूछा। उन्होंने कहा—"एक साधु कल सायंकाल को मेखला पहने जाता था। राजकुमारी ईश्वर-प्रार्थना के लिये उठीं, तो खिड़की का पर्दा उठ गया। साधु ने इन्हें घूरकर देखा, और इन्होंने भी उसे देख लिया। तत्पश्चात् वह कहीं चला गया।"

ख़ुरशेद जमाल ने नौकरों को आज्ञा दी कि उपर्युक्त हुलिए का साधु जहाँ मिले, उसको लाओ। नौकर मेले में ढूँढ़ते फिरे, और बड़ी कठिनाई से वह साधु सायंकाल को मिला। उसको साथ लेकर वे घर आए। ख़ुरशेद जमाल ने पर्दे के समीप बिठाकर लड़की का हाल कहा। वह बोला—"मुझे भीतर ले चलो। मैं ठीक कर दूँगा। ख़ुरशेद जमाल ने भीतर पर्दा कराया। साधु को पलँग के समीप खड़ा किया। उसने आँखें बंद करके दोनों हाथ अपने कपोलों पर रक्खे, और कुछ देर चुप खड़ा रहा। फिर कहा—"लो, लड़की अच्छी हो गई।"

देखा, तो वास्तव में ज्वर उतर गया था। मैजमाल उठ बैठी। ख़ुरशेद जमाल और सब दासियाँ आश्चर्य में थीं। साधु को बैठाया। कुछ

रुपए और कपड़े के दो थान भेंट किए। साधु ने कहा—"मैं नहीं लेता। मुझे लड़की की सूरत दिखा दो। नहीं तो वह बीमार हो जायगी।"

खुरशेद जमाल पहले तो हिचकिचाई; पर फिर यह विचार करके कि साधु तो माँ-बाप के बराबर होते हैं, पर्दा हटा दिया। मैजमाल ने साधु को देखा, और सिर झुका लिया। साधु ने मैजमाल को देखा, और बराबर देखता रहा। कुछ समय के उपरांत—"भला हो बाबा" कहकर चला गया।

वह तीस वर्ष का युवक था; परंतु रोगी प्रतीत होता था। मुख पर पीलापन बहुत था। सफ़ेद मेखला के सिवा उसके शरीर पर और कोई कपड़ा न था। आँखों से प्रकट होता था, मानो रोते-रोते सूज गई हैं। यह व्यक्ति उस मालन का लड़का था, जो मैजमाल के बाग़ की रक्षिका थी। मैजमाल को एक वर्ष पूर्व उसने बाग़ में देखा था। अपनी ग़रीबी और मैजमाल की शान का ख़याल करके उसको साहस न होता था कि अपनी उस वेदना को किसी के सम्मुख कहे, जो मैजमाल को देखने से उसके हृदय में स्वतः ही उत्पन्न हो गई थी।

छः महीने तक वह इसी उलझन में पड़ा रहा। उसके उपरांत उसको एक साधु मिला, जिससे उसने अपनी दशा वर्णन की। साधु ने उसे एक सफ़ेद मेखला दी और कहा कि उसके पहनने से उसके संपूर्ण कष्ट दूर हो जायँगे। मेखला पहनते ही उसमें एक विशेष परिवर्तन हो गया। वह घर-बार छोड़कर जंगल में निकल गया। छः महीने तक जंगलों में फिरता रहा। छः महीने के बाद वह आबादी में आया था, जहाँ उसने फिर मैजमाल को देखा था। अब उसके देखने में ऐसा आकर्षण उत्पन्न हो गया था कि मैजमाल को उसने एक दृष्टि में बीमार कर दिया।

× × ×

१४ सितंबर, सन् १८५७ ई० को एक रथ नजफ़गढ़ के समीप खड़ा था, और ख़ाकी वर्दी के सैनिक सिपाही उसको घेरे हुए थे। ये सब अँगरेज़ी सेना के लोग थे। उस रथ में ख़ुरशेद जमाल, मैजमाल और दासियाँ सवार थीं। बाहर चार नौकर तलवारें खींचे खड़े थे। सैनिक कह रहे थे—"हम भीतर की तलाशी लेंगे। इसमें कोई बाग़ी छिपा हुआ है।" नौकर कह रहे थे—"भीतर स्त्रियाँ हैं। हम पर्दा न खोलेंगे।" झगड़ा बढ़ा, और लड़ाई की नौबत आ गई।

नौकरों ने तलवार चलाई और एक-एक करके वे मारे गए। सैनिकों ने रथ का पर्दा उलट दिया। स्त्रियां को देखा, और गहने का संदूक़ उनसे छीन लिया। इसके सिवा और जो कुछ माल उनके पल्ले पड़ा, उसको छीन-झपटकर आगे बढ़े। रथवान भाग गया था। ख़ुरशेद जमाल और मैजमाल दासियों के साथ नजफ़गढ़ की ओर चलीं कि इतने में कुछ गूजर लठ लिए हुए आए, और उनसे गहना और कपड़े माँगने लगे। स्त्रियों ने कहा—"हमको तो सैनिकों ने लूट लिया है। अब हमारे पास कुछ भी नहीं है। तुम रथ और बैल ले लो।" परंतु गूजर न माने. उनके सब कपड़े छीन लिए। ख़ुरशेद जमाल और दासियों ने उनको बुरा-भला कहा। एक गूजर ने ख़ुरशेद जमाल के सिर पर लकड़ी मारी, और दूसरे ने दासियों पर लाठियों के वार किए। मैजमाल डरी-सहमी चुप खड़ी थी। उसको किसी ने न छेड़ा। ख़ुरशेद जमाल का सिर फट गया, और वह तडपकर मर गई। दासियाँ भी चोट के कारण ख़तम हो गई। मैजमाल अकेली खड़ी तमाशा देखती थी। माँ को मरते देखा, तो चिपटकर रोने लगी। गूजर तो मार-काटकर चले गए, और मैजमाल रोते-रोते अचेत हो गई। चेत हुआ, तो उसने देखा, न उसकी माँ की लाश है, और न दासियों की ही। न वह जंगल है। वरन् वह एक घर के भीतर चारपाई पर लेटी है। सामने एक गाय बँधी खड़ी है। कुछ मुर्ग़ियाँ आँगन में फिर रही हैं, और एक मेवाती सामने बैठा अपनी स्त्री से बातें कर रहा है। मैजमाल को फिर रोना आ गया। उसने मेवाती की स्त्री की ओर मुँह करके पूछा—"मेरी अम्मा कहाँ गई?" मेवातिन ने कहा—"वह मर गई थीं। उनको गाड़ दिया गया। तुमको यहाँ लाए हैं। तुम कुछ खाओगी? लो, खीर बनी है. खा लो।"

मैजमाल ने कहा—"मुझे भूख नहीं है।" यह कहकर वह हिच-

कियाँ भर-भरके रोने लगी। मेवातिन पास आकर ढाढ़स देने लगी। कहा—"बेटी, संतोष करो। रोने से क्या होता है? अब तेरी माँ जीवित नहीं हो सकती। हमारे कोई संतान नहीं है। बेटी बनाकर रक्खेंगे। इस घर को अपना घर समझ। तू कौन है? तेरा बाप कहाँ है? तू कहाँ जाती थी।"

मैजमाल ने कहा—"मैं दिल्ली के राजघराने की एक राजकुमारी हूँ। मेरे पिता को मरे ग्यारह वर्ष हुए। हम ग़दर की भागड़ में घर से निकले थे। नजफ़गढ़ में हमारे बाग़ का माली रहता है। उसके घर में जाना चाहते थे कि मार्ग में पहले सैनिकों ने लूटा, और फिर गूजरों ने अम्मा और दो दासियों को मार डाला।" यह कहते-कहते वह फिर रोने लगी।

कुछ दिनों तक मैजमाल मेवातिन के यहाँ आराम से दिन काटती रही। परंतु पिछले समय का स्मरण करके रोती थी। मगर, मेवातिन के प्रेम के कारण उसको किसी बात का कष्ट न था। बनी-बनाई रोटी मिल जाती थी। परंतु फिर भी मैजमाल को वह घर, उसकी सादगी काटे खाती थी, और उसे पिछले काल के आनंद-प्रमोद का स्मरण हो आता था। एक रात को मैजमाल, मेवातिन और उसका पति अपने घर में सोते थे कि पड़ोस के एक छप्पर में आग लग गई, और वहाँ से बढ़कर उनके छप्पर में भी आ गई। धुएँ की गंध से मैजमाल की आँखें खुल गईं। वह चीख़ती हुई उठी। मेवातिन और मेवाती का कुछ गहना घर के भीतर रक्खा था। वे उसको लेने के लिये भीतर दौड़े, और मैजमाल घर से बाहर को भागी। कोठे का जलता हुआ छप्पर गिर पड़ा, और वे दोनों उसके भीतर ही जलकर ख़ाक हो गए। गाँववालों ने बड़ी कठिनाई से आग बुझाई। मैजमाल का यह ठिकाना भी धूल का एक ढेर बनकर रह गया।

प्रातःकाल बची-खुची हड्डियों को गाँववालों ने गाड़ा। मैजमाल

को एक नंबरदार अपने घर ले गया। उसके कई बच्चे और दो स्त्रियाँ थीं। मैजमाल को एक चारपाई सोने को दी गई। वह दिन तो बीत गया। रात को एक स्त्री ने कहा—"अरी लड़की, दूध चूल्हे पर रख दे।" दूसरी बोली—"अरी, इधर आ। मेरे बच्चे को सुला दे।" एक ही समय में दो आज्ञाएँ सुनकर मैजमाल घबरा गई। उसने न कभी दूध चूल्हे पर रक्खा था, और न किसी बच्चे को लोरियाँ देकर सुलाया था। फिर भी वह दूध उठाकर चूल्हे पर रखने को चली। चूल्हे के समीप आकर ठोकर लगी। हाँडी हाथ से गिर पड़ी, और टूट गई। दूध सब बिखर गया। टूटने का शब्द सुनकर ज़मींदार की स्त्री दौड़ी आई। दूध को गिरा हुआ देखकर उसनें एक दुहत्थड़ मैजमाल के मारा, और लगी देने उसे गालियाँ।

मार खाने और गालियाँ सुनने का यह पहला ही अवसर था। मैजमाल खड़ी थर-थर काँप रही थी। दूध उसके कपड़ों पर भी गिरा था। कभी वह कपड़ों को देखती और कभी ज़मींदार की स्त्री को देखती, जो लगातार गालियाँ दे रही थी।

अंत में वह दीवार के सहारे लगकर खड़ी हो गई, और रोने लगी। मैजमाल को रोते देखकर ज़मींदार की स्त्री को बड़ा क्रोध आया। उसने जूती उठाकर दो-तीन जूतियाँ उसके मारीं, और कहा—"अब तू मुझे डराती है? मुई डाइन, मेवातिन को खा गई, अब यहाँ किसको खाने आई है? सब दूध गिरा दिया। परमात्मा भला करे मेरे बच्चों का। दूध का चूल्हे के सामने गिरना बड़ा ही अशुभ होता है। पता नहीं, तेरे आने से क्या आपत्ति आवेगी? मैजमाल पर जब जूतियाँ पड़ीं, तो वह बिलबिला उठी। उसनें दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लिया। इतने में ज़मींदार आ गया। उसने जो कोलाहल सुना, तो वह भी वहाँ आया। मैजमाल वहाँ से भागकर अपनी

चारपाई के पास आ गई। ज़मींदार और उसकी स्त्री भी दालान में आए। ज़मींदार ने अपनी स्त्री से पूछा—"क्या हुआ था ?" उसने सब बात बतला दी। उसने कहा—"चलो जाने दो। भोली-भाली स्त्री है। भूल हो गई। कुछ विचार न करो।" दूसरी स्त्री बोली—"यह भोली नहीं है। बड़ी बनी हुई है। मैंने इसे बुलाया कि तनिक बच्चे को सुला दे, तो कान में तेल डालकर चुप हो गई, और सुनी अनसुनी कर दी। इसको तुम घरवाली बनाकर लाए हो, या नौकर बनाकर। नौकर है, तो काम करना पड़ेगा।"

ज़मींदार ने उत्तर दिया—"मैं तो इसे दुखिया और निराश्रय समझकर लाया हूँ। इसको काम करना चाहिए। हमको एक नौकरनी की आवश्यकता भी थी।"

मैजमाल ने डरते-डरते कहा—"मुझको आज तक नौकरी करनी नहीं आती थी। तुम मुझको सिखा दो। भवितव्यता ने यह समय मुझ पर डाला। परंतु नौकरी करनी न सिखाई। मेरे सामने तो दासियाँ काम करती थीं। मैंने तो कभी कुछ काम नहीं किया।" यह कहते-कहते उसको ऐसा रोना आया कि हिचकी बँध गई। ज़मींदार ने कहा—"तू रो मत। धीरे-धीरे सब काम आ जायगा।" इसके उपरांत उसने मैजमाल को खाना दिलवाया। पर मैजमाल से खाया न गया, और वह यों ही पड़कर सो गई। प्रातःकाल ज़मींदार की स्त्री ने उसे खूब झँझोड़ा, और कहा—"अरी, उठती नहीं। कब तक सोवेगी ? झाड़ू देने का समय है। उठ।"

मैजमाल को सुध आई कि दिलशाद, नरगिस और सुंदरी उसे किस प्रकार जगाया करती थीं। कहाँ तो वह समय, और कहाँ ज़मींदार के यहाँ का यह समय ! वह ठंडी साँस भरकर उठी, और स्वभावानुसार दो-चार अँगड़ाइयाँ लीं।

ज़मींदार की स्त्री ने धक्का देकर कहा—"जँभाई लेकर नहूसत फैलाती है। उठती नहीं?" मैजमाल ने उस समय जाना कि वह एक दासो बन गई है, और राजकुमारो नहीं रहो। शीघ्र उठी, पर आँसू अविश्रांत रूप से उसकी आँखों से बह रहे थे। ज़मींदार की दूसरी स्त्री ने कहा—'यह स्त्री हमारे यहाँ नहीं निभ सकती। हर समय रोती है। बाल-बच्चों के घर में इस अभागिन का रखना अच्छा नहीं।" इतने में ज़मींदार आ गया, और उसने अपनी स्त्रियों के कहने से मैजमाल को खड़े-खड़े घर से निकाल दिया।

मैजमाल असमंजस में पड़ गई, और कहने लगी—"परमात्मन्! किधर जाऊँ?" इतने ही में वही मेखलाधारी साधु सामने से आया, और मैजमाल को देखकर खड़ा-का-खड़ा रह गया। मैजमाल पर भी इस आकस्मिक मिलन का बड़ा प्रभाव पड़ा, और वह भी कुछ गुम-सुम-सी हो गई। यद्यपि वह ऐसी अधोगति में थी कि उसको अपने शरीर की भी सुध-बुध न थी, तो भी साधु, उसकी मेखला, उसकी पीली आकृति और लाल आँखों का ऐसा प्रभाव उस पर पड़ा कि संपूर्ण शरीर में सनसनाहट होने लगी।

साधु ने कहा—"मेरी रानी तुम कहाँ?" मैजमाल ने 'मेरो रानी' का शब्द सुना, तो लज्जा से मुँह फेर लिया, और कहा—"मुझको भाग्य यहाँ ले आया है।" यह कहकर उसने अपना संपूर्ण वृत्तांत कहा। साधु ने कहा—"मेरा घर तो समीप ही है। परंतु मैंने कभी तुम्हारा समाचार नहीं सुना। चलिए, मेरे घर चलिए।"

मैजमाल उसके पीछे-पीछे चली। वह अपने घर गया, और मालिन से मैजमाल का समाचार कहा। वह दौड़ी हुई आई, मैजमाल के पैरों पर गिर पड़ी, और गिड़गिड़ाकर विनय-अनुनय करने लगी। बड़े मान के साथ उसको चारपाई पर बैठाया, और समाचार पूछती रही। कहा—"राजकुमारी! यह आपका घर है। मेरे बेटे के

सिवा और कोई नहीं है। आपकी कृपा और अनुग्रह से मेरा घर भरा-पुरा है। अब आप इस घर की स्वामिनी हैं, और मैं और मेरा बेटा आपके दासी-दास।"

मालिन ने अपने बूने-भर मैजमाल को इतना आराम पहुँचाया कि वह सब कष्टों को भूल गई। उसने देखा कि मालिन के लड़के के पास दूर-दूर से रोगी आते हैं। वह पहले अपनी मेखला पर हाथ मलता है, फिर अपने दोनों कपोलों पर उनको रखता है, आँखें कुछ देर बंद रखकर फिर खोल दता है, और कहता है, जाओ तुम अच्छे हो। इसी प्रकार सब रोगी बात-की-बात में अच्छे हो जाते हैं।

मैंजमाल कई दिन यह तमाशा देखती रही। फिर एक दिन उसने मालिन से पूछा—"तेरे लड़के में यह शक्ति कहाँ से आ गई? इसने मुझको भी एक दिन इसी प्रकार अच्छा कर दिया था।"

मालिन ने हाथ जोड़कर कहा—"राजकुमारी, यदि आप जीवन-दान दें, तो कहूँ।" मैंजमाल ने कहा—"मैं अब जीवन-दान देने योग्य नहीं हूँ। तुम कहो। मुझे इस भेद को जानने की इच्छा है।"

मालिन ने कहा—"राजकुमारी, मेरे लड़के को आपसे प्रेम हो गया था, और आपके विरह में इसने अनेक कष्ट भोगे। अंत में एक साधु ने उसको यह मेखला दी। यह उसी की कृपा है, जिससे हज़ारों को लाभ पहुँच रहा है, और परमात्मा ने घर बैठे तुमको भी यहाँ भेज दिया।"

मैंजमाल पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। कुछ दिनों बाद उसने मालिन से कहकर मेखलाधारी से विवाह कर लिया।

मालिन ने अपनी आयु-भर मैंजमाल की ऐसी सेवा की, और ऐसे प्रेम से उसको रक्खा कि वह कहती थी—"मुझको अपना बचपन भी स्मरण नहीं आता।"

परंतु मालिन के लड़के ने मेखला पहनना कभी नहीं त्यागा। उसकी मेखला की करामात दूर-दूर तक विख्यात हो गई, और इस प्रकार मैंजमाल का सोता भाग्य मेखला ने जगा दिया।

उन्नीसवाँ अध्याय

जब मैं राजकुमार था

बंबई के भिंडी-बाज़ार में मुग़ल-होटल के बराबर एक बुड्ढा आदमी बेहोश पड़ा था। आने-जानेवालों ने पहले ख़याल किया कि कोई थका हुआ यात्री है, जो अब तक सोता है। भिंडी-बाज़ार की इन पटरियों पर, जिन पर पैदल चलनेवालों का मार्ग है, प्रातःकाल के समय सैकड़ों परदेशी यात्री, जिनको घर नसीब नहीं, पड़े सोया करते हैं। परंतु जब दस बज गए, और बुड्ढा न उठा, तो पहरेवाले सिपाही ने पास आकर देखा।

बुड्ढा बहुत ही दुर्बल था। भौहों तक के बाल सफ़ेद थे। मुँह पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। आँखें भीतर धँसी हुई थीं। शरीर पर एक मैला कुरता था, जिसमें कई पेबंद लगे हुए थे। वह खद्दर का पाजामा पहने हुए था। सिपाही ने पहले तो जगाना चाहा। जब वह न उठा, तो समीप आकर ध्यान से उसकी ओर देखा, और बोला—"यह तो शायद मर गया है।" दो-तीन यात्रियों ने झुककर बुड्ढे की करवट बदली और उसके मुँह की ओर देखा, तो ज्ञात हुआ कि साँस ले रहा है, परंतु किसी कारण से अचेत है।

सिपाही ने एक गाड़ीवाले को बुलाया, बुड्ढे को उठाकर उसमें लादा, और जॉर्ज अस्पताल में ले गया। पारसी डॉक्टर ने बुड्ढे को देखकर कहा—"इसको किसी ने कुछ खिला दिया है। विष चढ़ चुका है, और इसकी दवा नहीं हो सकती।" फिर भी उसने उद्योग किया। थोड़ी देर बाद बुड्ढे को चेत हुआ। उसने कहा—"बेटी, तू कहाँ गई?"

कंपाउंडर ने डॉक्टर से यह समाचार कहा। डॉक्टर ने खाने के लिये शोरवा बतलाया।

जब बुड्ढे में थोड़ा दम आ गया, तो पुलीसवालों ने उसके बयान लिए; क्योंकि थाने का मुहर्रिर उसकी बेहोशी में एक फेरा करके चला गया था। जब उसको ज्ञात हुआ कि बुड्ढे को होश आ गया है, तो वह फिर आया, और उसके समाचार पूछे।

बुड्ढे ने कहा—"मैं चार महीने से बंबई में रहता हूँ। मेरा कोई घर नहीं है। सड़कों पर ही अपना समय काट लेता हूँ। मेरी एक बेटी रसोईंगीरी करती है। वह खेतवाड़ी में एक वेश्या के यहाँ नौकर थी, और सवेरे-शाम मुझको अपने हिस्से के खाने में से आधा खाना सड़क पर आकर दे जाती थी। परंतु चार दिन से वह नहीं आई। जिस घर में वह नौकर थी, वहाँ भी मैं गया, और वेश्या से भी उसका समाचार पूछा। उसने कहा कि वह तो दस दिन पहले ही नौकरी छोड़कर चली गई। यह सुनकर मैंने उसको और कई स्थानों में ढूँढ़ा। परंतु वह कहीं नहीं मिली। जब छः दिन का उपवास हो चुका, और मुझमें चलने की शक्ति न रही, तो मैं भिंडी-बाज़ार की सड़क पर रात को लेट रहा, और अचेत हो गया।"

थाने के मुहर्रिर ने पूछा—"तुम तो भीख माँगते थे, फिर क्यों भूखे रहे? बंबई शहर में तो भीख माँगनेवाले एंट्रेंस पास लोगों से अधिक कमा लेते हैं।"

मुहर्रिर की ये बातें सुनकर बुड्ढे को इतना क्रोध आया कि आँखें गड्ढों से उबल पड़ीं। उसने अपने धीमे स्वर को गले से बल-पूर्वक निकालकर कहा—"बस, आप चुपके रहिए। अधिक बकवाद न कीजिए। शायद आपने अपने बाबा के साथ मुझको भीख माँगते देखा होगा?" मुहर्रिर को एक भिखमंगे कँगले की यह बात सुनकर क्रोध आ गया। उसने बुड्ढे के एक थप्पड़ मारा। बुड्ढा थप्पड़ खाकर

चित गिर पड़ा। परंतु वह शीघ्र ही उठा, और डॉक्टर साहब का रूल मेज़ से उठाकर मुहर्रिर के सिर पर ऐसा मारा, जिससे मुहर्रिर का सिर फट गया, और वह अचेत होकर गिर पड़ा। लोगों ने बुड्ढे को पकड़ लिया, नहीं तो वह दूसरा वार और करना चाहता था।

डॉक्टर ने मुहर्रिर को ड्रेसिंगरूम में ले जाकर उसके घाव को धोया, और दवा लगाई। सिपाही बुड्ढे को लेकर थाने पहुँचा। अँगरेज़ इंस्पेक्टर वहाँ मौजूद था। जब उसने बुड्ढे की करनी सुनी, तो उसको भी बहुत क्रोध आया। परंतु उसने कहा—"मुहर्रिर के बयान तक इसको हवालात में रक्खो।"

शोरवा पीकर बुड्ढे में बहुत दम आ गया था, और मुहर्रिर को बराबर बुरा-भला कह रहा था।

घाव पर पट्टी बाँधे हुए मुहर्रिर थाने में आया, और इंस्पेक्टर को घटना-स्थल का वर्णन सुनाया। उसने बुड्ढे को हवालात से निकालकर फिर उसका बयान लिखना शुरू किया।

बुड्ढे ने कहा—"मैं बयान उस समय दूँगा, जब आप पहले मुहर्रिर साहब से क्षमा मँगवा लें। उन्होंने मुझ-जैसे आदरणीय पुरुष को भिखमंगा क्यों कहा?"

मुहर्रिर ने कहा—"क्यों बकता है? बड़ा आदरणीय बना कहीं का! स्वयं तू कहता था कि तेरी लड़की वेश्या के यहाँ नौकर थी, और अब मान और गौरव की बात करता है। तू भिखमंगा नहीं है, तो कोई ठग या डाकू अवश्य है।"

बुड्ढे पर फिर क्रोध का भूत चढ़ा। वह फिर मुहर्रिर पर आक्रमण करने ही वाला था, पर सिपाहियों ने उसको पकड़ लिया, और इंस्पेक्टर ने बुड्ढे को धमकाया कि वह अपने स्थान पर खड़ा रहे, नहीं तो उसके लिये अच्छा न होगा।

बुड्ढे ने कहा—"तो क्या आप एक कुलीन पुरुष को गालियाँ

दिलवाने के लिये लाए हैं ? मैं भारत-सम्राट् का ख़ून हूँ। मैं किसी की गाली कदापि न सुनूँगा, और अपनी और इसकी जान एक कर दूँगा।"

'भारत-सम्राट् का ख़ून' शब्द सुनकर इंस्पेक्टर को हँसी आ गई, और उसने मुहर्रिर से कहा—"यह तो पागल प्रतीत होता है। तुम इसे बकने दो।"

इसके उपरांत इंस्पेक्टर ने बुड्ढे से प्रश्न किए।

इंस्पेक्टर—तुम्हारी बेटी की आयु क्या है ?

बुड्ढा—बीस वर्ष की है। पर वह मेरी सगी बेटी नहीं है। मैंने उसको पाला है। मैंने उसका विवाह भी कर दिया था। पर उसका पति इंफ़्ल्युएंज़ा में मर गया। वह आदमजी पीर भाई के कारख़ाने में नौकर था। मेरी लड़की ने भोपाल में यह समाचार सुना, तो वह उसे देखने के लिये बंबई आई। मैं भी उसके साथ आया। यहाँ आकर वापसी के लिये ख़र्च न रहा। इसलिये चार महीने से हम बंबई में हैं। मेरी बेटी नौकरी करती है।

इंस्पेक्टर—तुम भोपाल में क्या काम करते थे ?

बुड्ढा—मैं एक अमीर के द्वार पर चौकीदार था। मेरी लड़की उसी अमीर की छोकरी थी। मैंने उसको बेटी बना लिया था।

इंस्पेक्टर—भारत-सम्राट् का ख़ून तुममें कितने दिनों से आया ? तुम अभी कहते थे न कि तुम भारत-सम्राट् का ख़ून हो। एक टके का चौकीदार यह गर्व कैसे कर सकता है ?

बुड्ढा (मुसकिराकर)—जब से तुम लोग यहाँ आए हो, मैं चौकीदार बन गया; नहीं तो तुम्हारे आने से पूर्व मैं राजकुमार था।

इंस्पेक्टर (बुड्ढे के हँसने से बिगड़कर)—हमारे आने से पहले यदि तुम राजकुमार थे, तो इतनी जल्दी चौकीदार कैसे बन गए ? मेरे सामने पागलपन की बात न करो। मैं तुम्हारी वास्तविकता जानता हूँ। तुम बड़े चतुर बदमाश हो।

बुड्ढा (क्रोध से)—जी हाँ, आप मेरी वास्तविकता से अनभिज्ञ नहीं, और न मैं आपकी से। मैंने इब्राहीम लोदी का घर लूटा था, इसलिये मैं बदमाश हूँ। आपने मेरा घर लूटा, इसलिये आप बदमाश हैं।

इंस्पेक्टर (क्रोध को रोकते हुए)—तुम्हारे घर में कितना सोना-चाँदी था, जो हमने लूट लिया?

बुड्ढा—जितना सोना-चाँदी बाबर और हुमाऊँ ने इब्राहीम लोदी के घर से लूटा था, वह सब आपके आधीन है।

इंस्पेक्टर—क्या तुम बाबर की औलाद हो?

बुड्ढा—हाँ, मैं बाबर की औलाद था। परंतु, अब चौकीदार, बरन् आपका क़ैदी हूँ। इंस्पेक्टर ने इसके पश्चात् कुछ न कहा, और बुड्ढे को हवालात में ले जाने की आज्ञा दी।

× × ×

बंबई में मुग़ल-वंश के एक राजकुमार रहते थे। भगवा वस्त्र पहनते थे। तलवार लगाए रहते थे। अँगरेज़ी अफ़सरों से भी उनका मेल-जोल था। इंस्पेक्टर ने उनको बुलाया, और कहा—"एक बुड्ढा कहता है कि मैं दिल्ली के शाही वंश का हूँ। क्या आप इसे पहचान सकते हैं? आप भी तो कहते हैं कि आप बहादुरशाह के पुत्र दारा-बख़्त के बेटे हैं।"

वह व्यक्ति हवालात के समीप गया, और बुड्ढे चौकीदार को देखकर बोला—"झूठ है। यह राजकुमार नहीं है।" हवालात के भीतर से बुड्ढे ने कहा—"नहीं, तुम्हीं राजकुमार नहीं हो।" इंस्पेक्टर ने पूछा—"इस बात के लिये तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि हवालातवाला बुड्ढा शाही वंश का नहीं है।" आगंतुक बोला—"प्रमाण कुछ नहीं। मैं अपने वंश के सब लोगों को जानता हूँ।"

हवालात के भीतर से बुड्ढा बोला—"मेरी आयु तुमसे अधिक है, और अपने वंश के समाचारों को तुमसे अधिक जानता हूँ। बताओ, जब बहादुरशाह गिरफ़्तार होकर रंगून गए, तो उनके साथ कौन-कौन गया था।" बंबईवाले राजकुमार ने कहा—"जवाँबख़्त, ज़ीनतमहल, बहादुरशाह और मैं। बहादुरशाह एक टमटम में थे, और ज़ीनतमहल दूसरी में थीं। जवाँबख़्त और मैं एक-एक पड़ाव करके कलकत्ता गए। वहाँ वाजिदअलीशाह ने मोतियों का थाल भेंट किया। पर अँगरेज़ों ने उसको पेश न होने दिया। कलकत्ते से हम रंगून गए, और बहादुरशाह की मृत्यु के उपरांत मैं बंबई चला आया।"

हवालाती बुड्ढे ने हँसकर कहा—"यह झूठ है कि बादशाह और ज़ीनतमहल टमटम में थे। दिल्ली के बच्चे-बच्चे को ज्ञात है कि वे दोनों पालकी में थे। एक पालकी में जवाँबख़्त और ज़ीनतमहल थीं, दूसरी में ताजमहल और तीसरी में स्वयं बादशाह थे। इनके अतिरिक्त उनके साथ और कोई न था।"

बंबईवाला राजकुमार कुछ घबरा-सा गया; क्योंकि उसने राजकुमार होने की एक कल्पित कथा अपने विषय में बंबई में फैला रक्खी थी, और लोग उसका बड़ा आदर करते थे।

हवालाती बुड्ढे ने और भी कुछ प्रश्न किए; पर बंबईवाले राजकुमार से उनका उत्तर देते न बन पड़ा। इंस्पेक्टर खड़ा हुआ बातें सुन रहा था। उसे विश्वास हो गया कि हवालाती बुड्ढा सच्चा है। इसलिये उसने उसको हवालात से निकाल लिया, और सामने कुर्सी पर बिठाकर समाचार पूछने लगा कि ग़दर से अब तक उस पर क्या-क्या बीती।

× × ×

हवालाती बुड्ढे ने कहा—"मैं मिर्ज़ा ख़िज़र सुल्तान का बेटा हूँ, जो बहादुरशाह के बेटे थे, और जिनको ग़दर के उपरांत गोली

से मार डाला गया। ग़दर में मेरी आयु अठारह वर्ष की थी। ग़दर के दिनों में मुझको पेचिश हो रही थी। चार महीने लगातार बीमार रहा। जिस दिन मेरे पिता पकड़े गए, मैं हुमाऊँ के मक़बरे में था। सायंकाल को जब समाचार आया कि मिर्ज़ा मुग़ल और मिर्ज़ा ख़िज़र सुल्तान इत्यादि मार डाले गए, तो मेरी माता मुझको और मेरी छोटी बहन को लेकर फ़रीदाबाद की ओर चल पड़ीं; क्योंकि वहाँ हमारे दो नौकरों का घर था।

"जब हमारी बैलगाड़ी बिदरपुर पहुँची, तो मेजर हडसन और मिर्ज़ा इलाहीबख़्श ने सवार लाकर हमको घेर लिया। गाड़ी की तलाशी ली, और मुझको पकड़ लिया। मैं मृतप्राय हो रहा था। शौच में ख़ून आता था। माँ ने रोकर कहा—'यह बहुत बीमार है। इसका कोई दोष नहीं है। यह तो चार महीने से घर में पड़ा हुआ है।' हडसन साहब ने कहा—'परंतु इसके बाप ने अँगरेज़ों के बच्चों और स्त्रियों का वध कराया था। हम इसको क़ैद करके जाँच करेंगे। यदि यह निर्दोष हुआ, तो छोड़ देंगे; नहीं तो इसका भी वध किया जायगा।' मुझे गिरफ़्तार होते देख मेरी बहन रोती हुई दौड़ी, और मुझसे चिमट गई। साहब ने उसको बल-पूर्वक हटाया, और मुझको एक सवार के पीछे बैठाकर दिल्ली-कैंप में ले आए।

"जब मैं माँ और बहन से अलग हुआ, तो वे दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं। माँ ने रोते-रोते केवल इतना कहा—'बेटा, जान से बच जाना, तो शीघ्रातिशीघ्र अपना मुखड़ा दिखाना।' जाँच के लिये मुझे समुंदरख़ाँ पंजाबी सिपाही के पास रक्खा गया। वह बड़ा ही क्रूर और निर्दयी था। पेचिश के कारण मैं बार-बार शौच के लिये जाता था। जब मैं निबटकर आता, तो वह कहता—'जाओ उसको अपने हाथ से साफ़ करो।' पहली बार मैंने इनकार कर दिया। पर उसने मेरे दो-तीन थप्पड़ मारे। निर्बलता के कारण मैं अचेत हो गया,

और रात-भर ज्वर मे जलता रहा। उसी दशा में शौच भी जाता था। चक्कर आते थे। गिर-गिर पड़ता था। पर भाग मारके प्रत्येक बार मैले को साफ़ करके बाहर डालने जाता था। एक बार मैंने कहा कि मुझको जंगल में जाने की आज्ञा दे दीजिए, जिससे मैला उठाने के कष्ट से बच जाऊँ। पर उस राक्षस का हृदय न पसीजा, और कहा—'भागने का विचार होगा। तुम जंगल में नहीं जा सकते।'

"खाने को भी बहुत ही बुरा भोजन मिलता था, जिससे पेचिश बढ़ गई थी। चार दिन के पश्चात् मैं बड़े साहब के सम्मुख पेश किया गया। गामीख़ाँ नामी सरकारी गवाह की गवाही हुई। उसने कहा—'यह लड़का अपने पिता मिर्ज़ा ख़िज़र सुल्तान के साथ पहाड़ी पर लड़ने जाता था, और लाल क़िले में जो अँगरेज़ों के बच्चे और स्त्रियाँ मारी गईं, उस समय भी यह उपस्थित था। इसी ने ज़नाने महल से आकर कहा था कि बादशाह ने इन लोगों के वध की आज्ञा दे दी है।'

"बड़े साहब ने यह गवाही सुनकर मुझे फाँसी देने की आज्ञा दी। मैंने कहा—'इस गवाह से यह तो पूछिए कि पहाड़ी पर विद्रोही सेना के साथ जाते या लाल क़िले में ज़नाने महल से बाहर आते इसने मुझे देखा था, या सुनी-सुनाई कहता है।'

गामीख़ाँ ने कहा—'मैंने अपनी आँखों से देखा था।' मैंने पूछा—'जिस रोज़ डगलस साहब क़िलेदार मारे गए, तुम कहाँ थे?' गामीख़ाँ का मुँह उतर गया। उसने सिर नीचा कर लिया, और कुछ देर के पश्चात् कहा—'उस रोज़ मैं अपने घर पर था।' मैंने कहा—'तुम झूठ बोलते हो। तुम स्वयं वहाँ बाग़ियों के साथ उपस्थित थे, और तुमने ही बाग़ियों को डगलस के वध के लिये उभारा था। मैं उस समय वहीं था; क्योंकि माँ ने मुझको पेचिश

के इलाज के लिये डगलस साहब के अतिथि डॉक्टर साहब के पास भेजा था। तुमने साहब और मेम साहिबा और उनके अतिथियों का वध करके चाँदी का एक गुलदान उठा लिया था। साहब की घड़ी भी तुमने ही ली थी।'

गामीख़ाँ ने कहा—'तुम झूठ कह रहे हो। मैं वहाँ नहीं था।' पर उसके मुख पर ऐसी घबराहट थी कि बड़े साहब को कुछ संदेह हुआ। उन्होंने कहा—'गामीख़ाँ के घर की तलाशी ली जाय। बस, उसी समय दौड़ गई और कुछ देर के बाद घड़ी और गुलदान लिए हुए सिपाही लौट आए। उनके सिवा हज़ारों रुपए का और भी बहुमूल्य सामान उसके घर से निकला।'

"साहब ने यह देखकर गामीख़ाँ को फाँसी की आज्ञा दी, और मुझको मुक्त कर दिया। क़ैद से छूटकर मैं फ़रीदाबाद आया। पर वहाँ आकर ज्ञात हुआ कि माँ और बहन वहाँ नहीं आईं। उनको बहुत कुछ ढूँढ़ा; परंतु उनका कुछ पता न चला। कुछ दिन फ़रीदाबाद ठहरा रहा। जब स्वास्थ्य ठीक हो गया, तो एक-एक पड़ाव करके पैदल भोपाल आया; क्योंकि वहाँ मेरे पिता के एक अमीर मित्र रहते थे। भोपाल पहुँचकर ज्ञात हुआ, उन अमीर का देहांत हो गया है। उनके उत्तराधिकारियों ने मेरी कुछ पूछ-ताछ न की। अंत में मैं एक दूसरे अमीर के यहाँ चौकीदारों में नौकर हो गया, और अपना सब जीवन हीं बिता दिया।"

पुलीस इंस्पेक्टर ने यह बयान सुनकर मुहर्रिर से कहा—"निस्संदेह यह प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। तुम इनसे क्षमा माँगो।" इसके उपरांत उसने राजकुमार की लड़की की खोज करने की आज्ञा दी, और लड़की की खोज होने तक उसने राजकुमार के लिये स्वयं ख़र्च देना स्वीकार किया। चार दिन के पश्चात् ज्ञात हुआ कि किसी बदमाश ने लड़की को पकड़कर कहीं छिपा दिया था, और उससे

वह बाज़ारू पेशा कराना चाहता था। जासूसों ने अंत में पता चला ही लिया। बदमाश को सज़ा हुई, और राजकुमार इंस्पेक्टर के ख़र्च से भोपाल चला आया।

चलते समय राजकुमार ने इंस्पेक्टर को बहुत धन्यवाद दिया, और कहा—"बुरा न मानिएगा। मैंने सच कहा था कि जब बाबर-हुमाऊँ ने भारतवर्ष-विजय किया, तो वे डाकू थे, और अब आप हैं। आज आप राजकुमार हैं, और तब मैं राजकुमार था।"

बीसवाँ अध्याय

मिर्ज़ा मुग़ल की बेटी

सन् १८५७ ई० के विद्रोह में जब विद्रोही सैनिकों ने बहादुरशाह बादशाह के वीर तथा साहसी लड़के मिर्ज़ा मुग़ल को अपना सेनापति बना लिया, और मिर्ज़ा मुग़ल प्रायः विद्रोहियों का नेतृत्व करने लगे, तो एक दिन ४६ अँगरेज़ स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े दिल्ली के लाल क़िले में विद्रोही सिपाहियों द्वारा मार डाले गए। जिस समय उन अँगरेज़ स्त्री-पुरुष और बच्चों को दीवान ख़ास के सामनें मारनें के लिये खड़ा किया गया, तो मिर्ज़ा मुग़ल अपनी छत पर खड़े हुए तमाशा देख रहे थे। उस समय उनकी आठ साल की लड़की, जिसका नाम 'नरगिस नज़र' था, उनके पास खड़ी थी। उसने जब देखा कि अँगरेज़ों के बच्चे भी मारे जाने के लिये खड़े किए गए हैं, और जब बच्चों ने बिलबिलाकर रोना शुरू किया, उनकी माताएँ घुटना टेककर ईश्वर से प्रार्थना करने और अपने बच्चों को छाती से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगीं, तो उस समय वह भी अन्य पुरुषों के साथ-साथ रोने लगी। मिर्ज़ा मुग़ल के कुछ दरबारी लोग, जो उनके पास खड़े थे, विशेषकर नरगिस नज़र के गुरु मौलाना ऐनुल्ला साहब, आँखों में आँसू भरकर बोले—"हुज़ूर! यह तो बड़ा क्रूर कार्य है। स्त्री और बच्चों के वध की तो किसी धर्म ने आज्ञा नहीं दी। कृपया आप सैनिकों को आज्ञा दीजिए कि वह स्त्री और बच्चों का वध न करें।" मिर्ज़ा मुग़ल ने उत्तर में कहा—"निस्संदेह यह बड़ी निर्दयता और अत्याचार है; परंतु सेना के अशिक्षित सैनिक और क्रोधित अफ़सरों को रोकना कोई सरल काम नहीं है। ये लोग

बिलकुल ही जंगली हैं, और अँगरेज़ों से विद्रोह करने के उपरांत इतने उद्दंड हो गए हैं कि किसी की भी आज्ञा नहीं मानते; जो मन में आता है, करते हैं।"

मौलाना ऐनुल्ला साहब ने कहा—"श्रीमन् ! इन्होंने तो आपको अपना सेनापति बना रक्खा है, और श्रीमान् सम्राट् महोदय को ये लोग अपना स्वामी भी स्वीकार कर चुके हैं। तो फिर क्या कारण है कि ये आपकी अथवा आपके पूज्य पिताजी की आज्ञा नहीं मानते ? आपको इस वध के रोकने का यत्न करना चाहिए। क्या आप देखते नहीं कि इन अँगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के फूट-फूटकर रोने से पृथ्वी और आकाश कंपायमान प्रतीत होते हैं ?"

मिर्ज़ा मुग़ल ने उत्तर दिया—"मौलाना साहब, मैं और पिताजी खिलौना-मात्र हैं। वास्तविक बात यह है कि कोई न मेरा कहना मानता है, और न पिताजी का ही। जब ये अँगरेज़ स्त्री-पुरुष गिरफ़्तार होकर आए, तो मैंने जान-बूझकर उनको सम्राट् महोदय के पास इसलिये भिजवा दिया था कि किसी-न-किसी प्रकार इनकी जान बच जाय। परंतु इन अत्याचारी विद्रोहियों ने क़िले के भीतर भी इन अँगरेज़ स्त्री-पुरुषों को अपनी ही देख-रेख में रक्खा, और सम्राट् का विद्रोहियों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यहाँ तक कि जब मेरे कहने से दो-एक बार बादशाह ने विशेष भोजन इन दीन क़ैदियों को अपने यहाँ से भिजवाना चाहा, तो विद्रोही सैनिक अँगरेज़ों को वह खाना देने को तैयार नहीं हुए। यही नहीं, उनका यह भी ख़याल है कि बादशाह और उनकी संतान अँगरेज़ों से मिली हुई हैं। इसी कारण किन्हीं मुँहफट सैनिकों ने मेरे और पिताजी के सम्मुख यह भी कहा है कि 'हमने अपने जीवन और अपने संपूर्ण कुटुंब को लात मार दी है; परंतु आप इसका कोई मूल्य नहीं समझते। बात-बात में आप अँगरेज़ों का ही पक्ष लेते हैं। यदि आप लोग

ऐसा ही करेंगे, तो हम पहले आप सब लोगों का तलवार से अंत कर देंगे।' मौलाना साहब, तुम्हीं न्याय करो। ऐसी असभ्य सेना से कोई क्या कह सकता है? यदि इस समय मैं इन लोगों को बच्चों और स्त्रियों के वध से रोकूँ, तो ये पहले मुझे और मेरे बच्चों को ही उसी स्थान पर ले जाकर मार डालेंगे, जहाँ इन बेचारे अँगरेज़ लोगों को मारने के लिये लाया गया है।"

मिर्ज़ा मुग़ल की आकृति परिवर्तित हो गई, और वह मौलाना ऐनुल्ला से यह कहना ही चाहते थे कि उन अँगरेज़ों की रक्षा के लिये कुछ किया जाय कि इतने ही में एक पुरुष ने, जो मिर्ज़ा के दरबारियों के पीछे खड़ा हुआ था, दौड़कर मौलाना ऐनुल्ला साहब की पीठ में एक छुरी भोंक दी, और उलटे पाँव यह कहता हुआ भागा—"देश-द्रोही और देश-द्रोहियों के मित्रों का यही दंड है।" मिर्ज़ा मुग़ल के दरबारी और स्वयं मिर्ज़ा मुग़ल मौलाना ऐनुल्ला साहब को सँभालने लगे। दो-एक आदमी आक्रमणकारी के पीछे, उसको पकड़ने के लिये, दौड़े। परंतु आक्रमणकारी कोठे से नीचे उतरकर दौड़ता हुआ विद्रोही सैनिकों के झुंड में जाकर ग़ायब हो गया।

छुरी मौलाना के बाईं ओर लगी थी, जिसने पसलियों को चीरकर गुर्दे के दो टुकड़े कर दिए, और बेचारे मौलाना गिरते-गिरते समाप्त हो गए, एक बात भी उनके मुँह से न निकलने पाई।

नरगिस नज़र यद्यपि बालिका थी, तो भी अपने गुरु की यह अवस्था देखकर पहले तो कुछ भयभीत हो गई, परंतु उसके उपरांत "हाय मेरे मौलवी साहब!" कहकर रोने लगी।

विद्रोही सेनाएँ भाग गईं। अँगरेज़ी सेना ने दिल्ली को फ़तह कर लिया। बादशाह बहादुरशाह हुमाऊँ के मक़बरे में गिरफ़्तार हो गए। विजयी सेनाओं द्वारा मिर्ज़ा मुग़ल और मिर्ज़ा अबूबकर आदि पकड़े तथा मार डाले गए।

उस समय नरगिस नज़र अपनी माता-सहित, जो मिर्ज़ा मुग़ल की उपपत्नी थी, बैलगाड़ी में चढ़कर जंगल में जा रही थी। गाड़ी में नरगिस नज़र, उसकी माता, और एक ख़ानिम नाम की धाय—कुल तीन स्त्रियाँ और दो मर्द थे। मर्दों में एक मिर्ज़ा घसीटा थे, जिनको शाहआलम से दूर का संबंध था, और दूसरा मिर्ज़ा मुग़ल की ड्योढ़ी का दारोग़ा क़ुदरतख़ाँ था। गाड़ी क़ुतुब से आगे बढ़कर छतरपुर के समीप पहुँची थी कि सामने से कई सवार आते दिखाई पड़े। उन लोगों ने समझा, अँगरेज़ी सेना आ गई, इसलिये उन्होंने गाड़ी को राह से हटा लिया, और चाहा कि वृक्षों की आड़ में छिप जायँ। परंतु गाड़ी दस पग भी न बढ़ने पाई थी कि सवार समीप पहुँच गए, और उन्होंने गाड़ी को घेर लिया। नरगिस नज़र ने देखा, उन सवारों में वह सवार भी है, जिसने मौलाना ऐनुल्ला को मारा था। उसको पहचानकर नरगिस नज़र ने चुपके से अपनी माता के कान में कहा—"यह अँगरेज़ी सेना नहीं, बल्कि विद्रोही सेना है।" सवारों ने गाड़ी को रोक लिया, और कहा—"जो कुछ माल तुम्हारे पास है, हमें दे दो।" मिर्ज़ा घसीटा ने एक सवार को पहचानकर कहा—"तुमको तो हमारी सहायता करनी चाहिए, न कि उल्टा हमी को लूटो।" इस पर मौलाना ऐनुल्ला के घातक ने कहा—"तुम लोग सहायता के पात्र नहीं हो; क्योंकि तुम्हारे ही भेदियों ने अँगरेज़ों को विजय प्राप्त कराई, और हमको भागना पड़ा।" दारोग़ा क़ुदरतख़ाँ ने कहा—"यह बात बिलकुल झूठ है। तुम्हीं लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी, इतने शक्तिशाली होने पर भी तुम लोग भाग खड़े हुए, और सब घर-बार एवं समस्त सुख और भोग-विलास पर पानी फेर दिया।" यह बात सुनकर सवार आपे से बाहर हो गए। उन्होंने गाड़ीवान तथा पुरुषों पर तलवारों के वार शुरू कर दिए। नतीजा यह हुआ कि मिर्ज़ा घसीटा, दारोग़ा क़ुदरतख़ाँ और गाड़ीवान मारे गए। बेचारी ख़ानिम

भी क़ुद्रतख़ाँ के बचाने में तलवार खाकर गिर पड़ी, और ठंडी हो गई। केवल नरगिस और उसकी माता बच रहीं। सवारों ने गाड़ी का सब सामान लूट लिया। यहाँ तक कि मृतकों के वस्त्र भी उतार लिए। नरगिस नज़र की माता के पास जितने आभूषण थे, वे भी छीन लिए। नरगिस नज़र के कानों और गले में जो आभूषण थे, वे भी जबरन् उतार लिए। तदुपरांत वे आपस में परामर्श करने लगे कि उन दोनों को कौन ले? एक सवार ने कहा—"स्त्री युवती है। इसे मैं अपनी स्त्री बनाऊँगा। उसको मुझे दे दो, और उसके बदले में मेरे हिस्से के आभूषण ले लो।" मौलाना ऐनुल्ला का घातक बोला—"इस लड़की को मैं लूँगा; क्योंकि मेरे कोई संतान नहीं है।" इसी परामर्श के अनुसार कार्य किया गया। नरगिस नज़र की माता को एक सवार ने अपने घोड़े पर बिठा लिया, और नरगिस नज़र को मौलाना ऐनुल्ला के घातक ने अपने घोड़े पर सवार कर लिया। नरगिस नज़र "अम्मा, अम्मा!" कहकर रोने लगी। उसकी माता ने उस सवार से कहा—"मेरी लड़की को भी तू ले ले, जिससे हम दोनों एक जगह रहें।" सवार ने कहा—"मैं भरतपुर का रहनेवाला हूँ। वहाँ तुझको ले जाऊँगा, और यह दूसरा सवार, जिसके हिस्से में तेरी लड़की आई है, सुहना, ज़िला गुड़गाँव का निवासी है। हम अपने आपस के हिस्से को बदलना नहीं चाहते।" नरगिस नज़र की माता ने कहा—"हाय, मुझ पर दया करो, और मेरी इकलौती बच्ची को मुझसे न छुड़ाओ।" परंतु उन निर्दयी सवारों के हृदय में तनिक भी दया न आई। भरतपुर का सवार नरगिस नज़र की माता को लेकर भरतपुर चला गया, और मौलाना ऐनुल्ला का घातक नरगिस नज़र को लिए हुए सुहना पहुँचा।

नरगिस नज़र का कहना है कि जब मेरी माता मुझसे पृथक् होकर चलीं, तो वह अपने बाल नोचती हुई और बिलख-बिलखकर

रो रही थीं। मैं भी "अम्मा-अम्मा" कहकर रोती और चिल्लाती थी। परंतु उन निर्दयी सवारों ने हमारी करुणा-जनक स्थिति पर कुछ भी दया नहीं की। मुझको जब तक अम्मा का घोड़ा दिखाई देता रहा, तब तक उनको चिल्ला-चिल्लाकर बुलाती रही। परंतु जब घोड़ा आँखों से ओझल हो गया, तो मैं चुप हो गई। सुहना में पहुँचकर वह सवार मुझको अपने घर ले गया। वह ज़ात का घोसी था। उसके घर में तीन-चार भैंसें बँधी हुई थीं। उसकी स्त्री ने जब मुझे देखा, और अपने पति से यह सुना कि वह मुझको बेटी बनाकर लाया है, तो वह बहुत प्रसन्न हुई, और उसने मुझको अति प्रेम से अपने समीप बैठाया। आठ दिन तक उस घोसिन ने मेरी ऐसी सेवा की कि मैं अपनी माता का वियोग भूल गई। आठ दिन के उपरांत अकस्मात् अँगरेज़ी सेना आई, उसने मेरे नवीन पिता को पकड़ लिया, और घर का सर्वस्व हर ले गए। मुझको मेरी घोसिन माता ने बहुत सांत्वना दी, और पड़ोस के एक व्यक्ति के यहाँ ले गई। तीन दिन पीछे मैंने सुना, वह घोसी विद्रोह के अपराध में फाँसी पर लटका दिया गया, और उसका सब सामान नीलाम कर दिया गया। बेचारी घोसिन भागते समय कुछ नक़दी अपने साथ ले गई थी, जिससे उसने दो साल तक अपना निर्वाह किया, और मेरे सत्कार करने में कोई कसर नहीं रक्खी।

एक दिन रात को हमारे घर में चोर आए। उन्होंने मेरी घोसिन माता के गले से हसली उतारनी चाही। उसकी आँख खुल गई, और वह चिल्लाई। इस पर चोरों ने घोसिन माता का गला घोट दिया।

घोसिन माता की मृत्यु के पीछे एक-दो दिन तक मकानवालों ने मुझसे कुछ भी न कहा, बरन् ढाढ़स बँधाते रहे। परंतु तीन दिन के पश्चात् उस मकानवाले की स्त्री ने कहा—"अरी, तू दिन-भर बैठी

रहती है। कुछ काम क्यों नहीं करती? हमारे यहाँ हराम की रोटी नहीं। सेवा करेगी, तो खाने को मिलेगा।" मैंने कहा—"मुझे काम बताओ। तुम जो कहोगी, वही करूँगी।" उस स्त्री ने कहा—"घर में झाड़ू दिया कर, भैंसों का गोबर उठाया कर, और उनके उपले पाथा कर।" मैंने उत्तर दिया—"उपले पाथना मुझको नहीं आता। झाड़ू मैंने कभी नहीं दी। ये काम मैंने कभी नहीं किए। मैं भारतवर्ष के बादशाह की पोती हूँ, परंतु परमात्मा नें मुझे इस विपत्ति में डाला है। इसलिये तुम जो काम करने को कहोगी, वही करूँगी। दो-चार बार यह काम करके मुझको बताओ, जिससे मैं सीख जाऊँ।" वह स्त्री बड़ी सरलहृदया थी। उसने मुझे झाड़ू देना और उपले पाथना सिखाया, और मैं वे काम करने लगी।

एक दिन मुझको बहुत वेग से ज्वर आ गया था, और उसके कष्ट के कारण मैं उपले न पाथ सकी। उस स्त्री का पति घर में आया, और मुझको पड़ा हुआ देखा, तो मेरे एक ठोकर मारी और कहा—"दस बज गए, तू अब तक पड़ी सोती है? यह लाल क़िला नहीं, घोसी का घर है। उठकर बैठ, और गोबर पाथ।" घोसी के ठोकर मारने से मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैं उठ बैठी। मैंने उससे क्षमा माँगी, ज्वर की अवस्था में ही झाड़ू भी दी, और उपलें भी पाथे। उस समय तो मुझे इतनी ही समझ थी; परंतु आज जब उस कष्ट का ध्यान आता है, तो हृदय विकल हो जाता है, और मैं सोचती हूँ कि उन अभागे क्रूर विद्रोहियों के कारण हम लोगों को कैसी-कैसी आपत्तियाँ सहन करनी पड़ीं। हम उस महल के रहनेवाले थे, जिसकी कि भीतरी अवस्था की कल्पना में कवियों ने काव्य-के-काव्य रच डाले थे, और उसी के वर्णन में एक स्थल पर यह आया है—

"स्वर्गलोक यदि भूमि पर, तौ है या ही ठौर ।"

परंतु आपत्तियों ने यह दिन दिखाया कि हम लोग राजप्रासादों से निकलकर द्वार-द्वार ठोकरें खाते फिरते और उपले पाथते थे।

दो वर्ष ऐसी ही आपत्तियों में बीते। अंत में उस घोसी ने अपने भाई के साथ मेरा निकाह कर दिया जहाँ मेरी संपूर्ण आयु व्यतीत हुई।

मैंने घोसियों के जीवन में जान-बूझकर कभी क़िले और उसकी बादशाही का विचार नहीं किया। परंतु मैं विवश थी। प्रति दिन बाल्यावस्था का स्मरण हो आता था, और स्वप्न में भी देखा करती थी कि मेरे पिता मिर्ज़ा मुग़ल मसनद (गद्दी) पर बैठे हैं। मैं उनके घुटने पर सिर रक्खे लेटी हूँ। दासियाँ चमर ढोर रही हैं, और संसार मुझको स्वर्ग का एक छोटा-सा अंग प्रतीत होता है। परंतु जब आँख खुलती थी, तो टूटे हुए छप्पर, एक चर्खे और तीन खाटों के सिवा घर में कुछ भी दिखाई न पड़ता था।

यदि अब कोई मुझसे पूछे कि क्या तुम मिर्ज़ा मुग़ल की पुत्री नरगिस नज़र हो, तो मैं स्पष्ट रूप से कह दूँगी कि "नहीं, मैं तो एक दीन घोसिन हूँ; क्योंकि मनुष्य की जाति कर्मानुसार ही होती है।"

इक्कीसवाँ अध्याय

विद्रोही की प्रसूति

नवाब फ़ौलादख़ाँ का शव पहाड़ी के मोर्चे से जब घर में आया, तब उनकी पुत्रवधू के प्रसव-वेदना हो रही थी। उस समय दिल्ली का कोई भी घर ऐसा न था, जहाँ भागने और शहर से बाहर निकलने की तैयारी न हो रही हो। बादशाह बहादुरशाह के विषय में सर्वसाधारण में यह किंवदंती फैली हुई थी कि वह लाल क़िले से निकलकर हुमाऊँ के मक़बरे में चले गए।

नवाब फ़ौलादख़ाँ एक पुराने अमीर थे। पर उनके पिता किसी अपराध के कारण अकबरशाह द्वारा दंडित हुए थे, और इसलिये वह अपनी जागीर और पद से हाथ धो बैठे थे। उस समय फ़ौलादख़ाँ जवान थे, और उन्होंने अँगरेज़ी सेना में नौकरी कर ली थी। जब सैनिकों ने विद्रोह किया, तो वह भी अपने रिसाले को लेकर अँगरेज़ों पर चढ़ गए। पहाड़ी पर अँगरेज़ी मोर्चा था। वह बड़ी वीरता और साहस से लड़े, और एक गोले का टुकड़ा लगने से उनका काम तमाम हो गया। सैनिक लोग जब शव को घर में लाए, तो उन्होंने देखा, उनकी पुत्रवधू के प्रसूति-पीड़ा हो रही है, और कोई दाई नहीं मिलती।

फ़ौलादख़ाँ का युवा पुत्र चार दिन पहले मारा गया था। बेचारी स्त्री चार दिन से विधवा थी। सास को मरे दो वर्ष हो गए थे। घर में ससुर के सिवा कोई अन्य संरक्षक न था। उनकी भी आँखें बंद हो गईं। उनकी पुत्रवधू—सकीना ख़ानिम—के लिये संसार अंधकारमय हो गया। घर में सब कुछ था। एक छोड़, चार-चार धाएँ

भी सेवा में उपस्थित थीं। परंतु घरवाले का भरोसा ही और होता है। सकीना खानिम ने जब ससुर की मृत्यु का समाचार सुना, तो वह चिल्ला उठी, और मूर्च्छित हो गई।

शव आँगन में रक्खा हुआ था। सैनिक द्वार पर खड़े हुए थे। सकीना दालान में पलँग पर अचेत पड़ी थी। दो धाएँ सकीना के सिरहाने भौचक्की बैठी हुई थीं, दो चकितावस्था में परमात्मा की इस करनी को देख रही और फूट-फूटकर रो रही थीं।

थोड़ी देर पश्चात् सकीना खानिम को चेत हुआ, और पीड़ा की उग्रता से विकल होकर उसने धाय से कहा—"देखो, ड्योढ़ी पर कोई सिपाही हो, तो उससे दाई बुलवाओ।" धाय दौड़ी हुई द्वार पर गई, और "हाय-हाय" कहती हुई उलटे पाँव भागी हुई आई। कहा—"बीबी, सिपाहियों को गोरे खाकी * पकड़े लिए जाते हैं। और, वे गोरे खाकी हमारे घर के समीप ही आ रहे हैं।" सकीना बोली—"मुई, द्वार तो बंद कर।" धाय फिर उलटी फिरी, और उसने द्वार के किवाड़े बंद कर दिए। प्रसूति-पीड़ा बढ़ी, और सकीना के पुत्र उत्पन्न हुआ। न दाई पास थी और न कुछ सामान, परमात्मा ने स्वयं ही कठिनाई को सरल कर दिया। पर बेचारी सकीना कष्ट से फिर अचेत हो गई। धाय ने शीघ्रता-पूर्वक शिशु को स्नान कराया, और कपड़े में लपेटकर गोद में लिया।

सकीना की आयु १७ वर्ष की थी। विवाह हुए केवल पंद्रह महीने ही हुए थे। पीहर फ़र्रुख़ाबाद में था, और वह दिल्ली में। जब उसे चेत हुआ, तो उसने धाय से कहा—"मुझे सहारा दो। उठाकर बिठाओ।" वह बोली—"बेटी! ऐसी भूल न करना। अभी लेटी रहो। तुममें बैठने की शक्ति कहाँ है?" सकीना ने कहा—"क्या

---

* ग़दर में अँगरेज़ी सिपाहियों को ख़ाकी कहा जाता था।

कहती हो बुआ, यह समय इन सावधानियों का नहीं है। भाग्य में न-जाने अभी क्या-क्या लिखा है ?"

धाय ने यह सुनकर उसको सहारा दिया, और सकीना को बिठाकर कमर से तकिया लगा दिया। सकीना ने पहले अपने बच्चे को प्रेम-भरी दृष्टि से देखा, जो संसार में उसकी सबसे प्रथम मनोकामना थी, और उसका मन यही चाहता था कि उसको अनवरत देखती ही रहे। परंतु उसको लज्जा आ गई, और उसने मुसकिराकर अपना मुख बच्चे की ओर से हटा लिया। ज्यों ही उसकी दृष्टि आँगन की ओर गई, तो उसने फ़ौलादख़ाँ के रक्खे हुए शव को देखा। उसके आनंद को एक धक्का-सा लगा, जिससे वह छटपटा-सी गई और बड़ी समझदार होने पर भी उसके मुख से बेसिर-पैर की अंड-बंड बातें निकलने लगीं। उसने कहा—"अपने अनाथ पौत्र को देख लीजिए। उठिए, आपको इसके देखने की बहुत ही आकांक्षा थी। इसके बाप को गोद में लेकर आपने क़ब्र में सुलाया था। इसको भी गोद में लेकर क़ब्र में सो जाइए। मैं अनाश्रिता इसको कहाँ रक्खूँ, और किस प्रकार रक्खूँ! इस नन्हे अतिथि को क्या पता कि जिस घर में वह आया है, वह एक भयंकर आपत्ति में है। दिल्ली में आप मेरे पिता-तुल्य थे। आप भी चल बसे। फ़रुख़ाबाद में मेरा मायका है। वे भी मुझसे बिछुड़ गए। इस लड़के का भी पिता था, जिससे मेरा जीवन प्रकाशमय था। उसको भी गोली ने समाप्त किया।" यह वाक्य कहकर सकीना को कुछ ख़याल आ गया। उसने कष्ट से पीड़ित होकर अपना सीधा हाथ हृदय पर रख लिया, और बायाँ हाथ मुख पर रखकर गर्दन तकिए से लगाकर रोने लगी। रोते-रोते मूर्च्छित हो गई।

धाय ने सकीना को बेहोशी में छोड़ा, और द्वार खोलकर बाहर गई कि किसी को बुलावे; और फ़ौलादख़ाँ को अंत्येष्टि क्रिया

का कुछ प्रबंध करे। परंतु उसको संपूर्ण गली निस्तब्ध प्रतीत हुई। एक भी मनुष्य चलता-फिरता न दिखाई पड़ा। उसने संकेत से दूसरी धाय को बुलाया और कहा—"बुआ! अपनी जान की ख़ैर मनाओ, और चलो यहाँ से भाग चलो। सकीना के साथ रहेंगी, तो जीवन के लाले पड़ जायँगे।" वह बोली—"ऐसी आपत्ति में स्वामी के साथ विश्वासघात करना और अपनी जान लेकर भाग जाना घोर पाप और मनुष्यत्व के विरुद्ध है—फिर ऐसी दशा में, जब कि एक नन्हा बच्चा भी सकीना के साथ है!" पहली ने उत्तर दिया—"तू तो पागल है। किसकी भक्ति और कैसा मनुष्यत्व! जीवन है तो जगत् है। मैं तो जाती हूँ। तू जाने, और तेरा काम जाने। सैनिक अभी आते होंगे। सब घर लूट लेंगे, और हमको मार डालेंगे।" यह बात सुनकर दूसरी भी भयभीत हो गई, और उसने तीसरी और चौथी धाय को भी इशारे से अपने निकट बुलाया। वे सब भागने पर उतारू हो गई, और कहा—"चलती हो तो कुछ ख़र्च लेकर चलो। सकीना इस समय अचेत है। तालियाँ सिरहाने से ले लो, और नक़दी का संदूक़ कोठरी से निकालकर चल दो।"

जिसकी गोद में बच्चा था, उसको तरस आया। वह कहने लगी—"इसको कौन रक्खेगा?" एक ने कहा—"माता के पास लिटा दो।" वह बोली—"नहीं बुआ, मैं इसको साथ लेकर चलूँगी।" वे सब बोलीं—"क्या ख़ूब? अपना जीवन तो संकट में है। बच्चे को कैसे सँभालोगी? इसके सिवा बेचारी सकीना तड़पकर मर जायगी। तुमको दया नहीं आती?" उसने उत्तर दिया—"तुम सकीना को अकेला छोड़कर जाती हो, इस पर तो तुमको दया नहीं आती। मैं इस लाल को क्यों न ले जाऊँ? मैं अपनी बेटी को दूँगी। वह इसको पालेगी। उसका बच्चा अभी मर गया है। यहाँ छोड़ा, तो सकीना भी मरेगी, और यह बच्चा भी।"

अंत में वे चारों-की-चारों नक़दी का संदूक़ और बच्चे को साथ लेकर, घर से निकलकर, अपने-अपने ठिकानों को चली गईं, और सकीना को उस घर में अकेला छोड़ दिया, जहाँ एक शव के सिवा कोई दूसरा व्यक्ति न था।

सकीना प्रसव की दुर्बलता, असहायता और कष्ट के कारण चार घंटे तक बेसुध रही। रात के आठ बजे उसे चेतना हुई, तो घर में घोर अंधकार था। उसने आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखा। जब कुछ दिखाई न दिया, तों समझी, मैं मर गई हूँ। थोड़ी देर पश्चात् आकाश में चमकते हुए तारागण दिखाई पड़े। वह समझी, मैं जीवित हूँ, और पलँग पर लेटी हूँ, तब उसनें धायों को बुलाना शुरू किया। जब कोई न बोली, तो चकित और भयभीत होकर उठ बैठी। उसकी दुर्बलता जाती रही, अथवा उसको स्मरण न रहा कि मैं दुर्बल हूँ। पलँग से नीचे उतरी। दीपक को जलाया, और देखा, घर में कोई आदमी नहीं है। आँगन में ससुर का शव रक्खा हुआ है। इसके सिवा कुछ भी दिखाई न पड़ा।

रात्रि के समय शव को देखकर उसको बहुत भय लगा, और वह फूट-फूटकर रोने लगी। मुहल्ले में कोई मनुष्य होता, तो रोना सुनकर भीतर आता। परंतु मुहल्लेवाले तो पहले ही सब भाग चुके थे। सकीना रोते-रोते ऐसी डरी कि बेसुध होकर गिर पड़ी। प्रातः-काल तक वह मूर्च्छितावस्था में रही। जब दिन चढ़ा, तो उसने आँखें खोलीं।

उस समय उसको अपने मन में सहारा-सा प्रतीत हुआ। यद्यपि दो वक़्त से वह निराहार थी, तो भी दुःख, भय, और आपत्ति के कारण कुछ दृढ़-सी हो गई थी। इसके अतिरिक्त सैनिक घराने में पालन-पोषण होने के कारण उसका हृदय अन्य स्त्रियों की भाँति कायर न था। उसने चाहा कि शव की किसी प्रकार अंत्येष्टि क्रिया

करे, और स्वयं कुछ खाय; क्योंकि उसको बड़े ज़ोर से भूख लगी हुई थी। अकस्मात् उसको अपने नवजात शिशु का स्मरण हुआ। इसका स्मरण आना था कि कलेजे में मातृ-प्रेम की एक हूक-सी उठी, और उसने एक पागल की भाँति दौड़-दौड़कर सारे घर को ढूँढ़ना शुरू किया। जब कहीं पर भी शिशु न मिला, तो पानी के घड़ों के ढक्कन उठा-उठाकर उनमें झाँकने लगी कि कहीं उनके भीतर ही बालक न हो। वह पलँग के तकिए उठा-उठाकर छाती से लगाने लगी।

अंत में बढ़ती हुई विपत्ति ने ही उसको सहारा दिया। उसके हृदय को थोड़ी-सी सांत्वना मिली। वह बच्चे के ख़याल को भूल गई, और ससुर की अंत्येष्टि का विचार उसके सम्मुख आ गया। उसने आलमारी खोली, और एक सफ़ेद चादर निकालकर शव पर डाल दी। फिर उसने जगदीश्वर से प्रार्थना की—

"भगवन्! यह मेरे ससुर का शव है, जिसको न कफ़न प्राप्त है, न और ही कुछ। मैं किसका सहारा ढूँढ़ूँ? मेरे स्वामी भी मुझे धोखा देकर चले गए। मेरा लाल भी मुझसे छिन गया। अब तेरे सिवा मेरा कोई सहारा नहीं है। इस अनाथ दुखिया की प्रार्थना स्वीकार कर और हे करुणानिधान, मेरा हाथ पकड़।"

सकीना ख़ानिम ने ये अंतिम शब्द कहे ही थे कि इतने में ही द्वार खुला, और चार ख़ाकी सैनिक भीतर आए। सकीना ने शीघ्रता से सिर उठाया, अपरिचित पुरुषों को आता देखकर चादर से मुख ढक लिया, और भय के मारे कोने में छिपना चाहा। परंतु सैनिक भीतर आ चुके थे। उन्होंने सकीना को पकड़ लिया, और बलात् मुख खोलकर देखा। सब मिलकर बोले—"युवती है, युवती है, और बड़ी रूपवती है।" इसके उपरांत उन्होंने सकीना को छोड़ दिया, और घर का सब सामान देखने लगे। नक़दी तो धाएँ ले-

गई थीं। कुछ आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र उनके हाथ लगे। आँगन में शव के ऊपर से चादर उठाकर उन्होंने कहा—"ओह ! यह कोई बड़ा विद्रोही है।"

तदुपरांत सैनिकों ने सकीना को हाथ पकड़कर उठा लिया, और अपने साथ चलने को कहा। सकीना मुँह से न बोली, और सैनिकों के अत्याचार से बाध्य होकर खड़ी हो गई। वह यह भी न कह

सकी कि मैं प्रसूता हूँ, वरन् उसने कहा कि मैं भूखी हूँ। उसके मुँह से यह न निकला कि मुझे न सताओ। मेरा इस संसार में कोई सहायक नहीं है। लज्जा उसको ऐसा कहने से रोकती थी।

जब सैनिक उसको घसीटकर ले चले, और सकीना द्वार पर पहुँच गई, तो उसने मुड़कर घर की ओर देखा। एक ठंडी साँस लेकर कहा—"ऐ सुसराल! मैं तुझसे पृथक् होती हूँ। ऐ वेकफ़न के मरनेवाले! तुझको प्रणाम करती हूँ। मैं उन तलवार चलानेवालों की वंशजा हूँ, जो यदि जीवित होते तो अपने मान पर प्राणों को भेंट कर देते।" सकीना के इस दुःखपूरित वाक्य पर सिपाही हँसे, और उसको खींचते हुए बाहर चले गए। सकीना कुछ दूर तक चुपचाप चली गई। तब उसने कहा—"मैं प्रसूता हूँ! मुझ पर दया करो। मैं भूखी हूँ। मुझ पर करुणा करो। मैं तो तुम्हारे देश की ही हूँ। मैं अबला हूँ। मैं निरपराधिनी हूँ, और हूँ तुम्हारी धर्मावलंबिनी।"

यह सुनकर चारों सिपाही रुक गए, और उन्होंने शोक प्रकट करते हुए कहा—"तू घबरा नहीं, हम तेरे लिये सवारी लाते हैं।" यह कहकर तीन आदमी ठहर गए, और एक घायलों की गाड़ी लाया, जिसमें सकीना को रखकर वे लोग उसको पहाड़ी कैंप में ले गए।

बारह वर्ष पीछे

किसी को भी ज्ञात नहीं कि विद्रोह की प्रसूता सकीना पर बारह वर्ष कैसे बीते, और वह कहाँ-कहाँ रही एवं उसने क्या-क्या कठिनाइयाँ उठाईं। जब उसको देखा गया, तो रोहतक के एक मुहल्ले में भिक्षा माँग रही थी। उसके पाँव में जूतियाँ भी न थीं। उसका पाजामा फटा हुआ था। उसका कुरता अत्यंत मैला और पेवंददार था। सिर का दुपट्टा बिलकुल फटा हुआ एक चीथड़ा-सा प्रतीत होता था। कदाचित् वह अत्यंत भूखी प्रतीत होती थी। वह केवल हाड़ों का एक कंकाल थी। आँखों में घेरे पड़े हुए थे। सिर के बाल उलझे हुए थे। मुख पर सौंदर्य था, परंतु लुटा हुआ। आँखों में प्राकृतिक छवि थी, परंतु उजड़ी हुई और सताई हुई। उसको चलने में चक्कर आते थे, और दीवार पर हाथ रखकर सिर

को झुका लेती थी। उसकी टाँगें जब लड़खड़ाती थीं, तो तनिक रुककर साँस लेती और फिर आगे बढ़ती थी।

थोड़ी दूर जाकर उसको एक ऐसा गृह मिला, जहाँ विवाहोत्सव मनाया जा रहा था। सैकड़ों मनुष्य भोजन करके बाहर आ रहे थे। वह वहाँ ठहर गई। उसने करुणा-पूर्ण शब्दों में कहा—"मैं दुखिया हूँ। बड़े घर की बेटी हूँ। मान गँवाकर, लज्जा मिटाकर, रोटी के टुकड़े माँगने आई हूँ। भला हो आप लोगों का, मुझको भी रोटी का एक टुकड़ा दीजिए। आपके वर की कुशल, वधू की कुशल, और आप लोगों की कुशल। एक टुकड़ा मुझे भी दीजिए।" सकीना का शब्द फ़क़ीरों के होहल्ला में विलीन हो गया। और किसी ने न सुना, वरन् एक नौकर ने, जो विवाहोत्सव का प्रबंधक था, उसको ऐसा धक्का दिया कि बेचारी चारों शाने चित गिर पड़ी। गिरते समय उसके मुख से सहसा यह निकल पड़ा—मैंने तीन दिन से कुछ नहीं खाया। मुझे न मार। मैं स्वयं ही दैव की मारी हुई हूँ। हे परमात्मन्! मैं कहाँ जाऊँ? मैं अपनी विपत्ति किसको सुनाऊँ? यह कहकर वह रोने लगी।

एक बालक खड़ा हुआ यह सब देख रहा था। उसको स्वाभाविक ही सकीना पर करुणा आ गई, और रोने लगा। उसने सकीना को सहारा देकर उठाया, और कहा—"आओ, मेरे साथ चलो। मैं तुमको रोटी दूँगा।"

सकीना लड़के के साथ बड़ी कठिनता से उठकर गई। लड़का समीप के घर में नौकर था। वह उसको वहाँ ले गया, और विवाह का आया हुआ अपने भाग का भोजन उसके सम्मुख रख दिया। सकीना ने दो ग्रास खाए। पानी पिया। आँखों में दम आया, तो बालक को अनेकानेक आशीर्वाद देने लगी।

उसने लड़के को ध्यान से जो देखा, तो उसके हृदय में धुआँ-

सा उठा और लड़के के गले से लिपटकर रोने लगी। लड़का भी सकीना को चिमटकर अधीर-सा हो गया। सकीना ने पूछा—"तू किसका बच्चा है?" वह बोला—"मेरी माता इस घर की धाय है, और मैं भी यहीं नौकर हूँ।" सकीना ने कहा—"तुम्हारी माता कहाँ है?" लड़के ने उत्तर दिया—"वह और नानी, दोनों इन चौधराइन के साथ, जिनकी वह नौकरनी हैं, विवाह में गई हुई हैं।" सकीना यह सुनकर चुप हो गई। परंतु वह सोचती थी कि उस लड़के पर उसे इतना प्रेम क्यों है?

इतने ही में लड़के की माता और नानी घर में आईं। सकीना ने तुरंत पहचान लिया कि लड़के की नानी सकीना की धाय है, जो ग़दर में उसके बच्चे को लेकर भाग गई थी। धाय ने सकीना को न पहचाना। परंतु जब सकीना ने उसका नाम लेकर उसको बुलाया, और अपना नाम और परिचय उसको दिया, तो धाय उससे लिपट-कर रोने लगी।

लड़के को जब विदित हुआ कि वह वास्तव में सकीना का बेटा है, तो वह फिर दुबारा सकीना से चिमटकर और लिपटकर रोने लगा। सकीना ने अपने बच्चे को छाती से लगाकर आकाश की ओर देखा और कहा—"धन्य है परमात्मन्! तूने ग़दर की विपत्तियों में मेरे बच्चे को जीवित रक्खा, और बारह वर्ष पश्चात् मुझ अभागिनी के दिन फेर दिए।"

इसके उपरांत सकीना ने फ़र्रुख़ाबाद—अपने पीहर—को पत्र भिजवाया। वहाँ पिता का देहांत हो चुका था। तीन भाई जीवित थे। वे रोहतक आए, और बहन और भांजे को साथ ले गए। लड़के ने धाय और उसकी लड़की—उसके पालनेवाली—को अपने साथ ले लिया, और फ़र्रुख़ाबाद जाकर वे लोग आनंद से रहने लगे।